एक
आत्मिक अगुवा

जै़क पूनन

प्रकाशक
मसीही साहित्य संस्था
70 जनपथ, नई दिल्ली-1

A SPRITUAL LEADER
by
Zac Poonen

Copyright – Zac Poonen (1999)

ISBN: 978-81-932475-5-6

This book has been copyrighted to prevent misuse.

It should not be reprinted or translated without written permission from the author.

Permission is however given for any part of this book to be downloaded and printed provided it is for FREE distribution, provided NO ALTERATIONS are made, provided the AUTHOR'S NAME AND ADDRESS are mentioned, and provided this copyright notice is included in each printout.

For further details Please contact:
The Publisher cfc@cfcindia.com
40 DaCosta Square,
Bangalore – 560084, India

1st Hindi Edition, 2000 copies, 2016

Printed & Published by
MASIHI SAHITYA SANSTHA
70 Janpath, New Delhi - 110001
Ph: 011-23320253, 23320373
E-mail: mssjanpath@gmail.com

₹ 60/-

विषय वस्तु

	अध्याय	*पृ. सं.*
	पुस्तक के विषय में	5
1.	परमेश्वर द्वारा बुलाया हुआ	7
2.	परमेश्वर को जानने वाला	13
3.	परमेश्वर का भय मानने वाला	19
4.	परमेश्वर की सुनने वाला	23
5.	मसीह की देह द्वारा संतुलित किया हुआ	31
6.	अधीनता द्वारा टूटा हुआ	37
7.	दूसरों की ज़िम्मेदारी उठाने वाला	45
8.	जीवन में से सेवकाई करने वाला	51
9.	परमेश्वर की सामर्थ्य से सेवा करने वाला	57
10.	आत्मिक अधिकार का इस्तेमाल करने वाला	63
11.	हरेक भय से मुक्ति पाया हुआ	69
12.	दूसरों को भय से मुक्त करने वाला	79
13.	स्वयं को नम्र व दीन करने वाला	85
14.	मलिकिसिदक के याजक पद वाला	93
15.	एक उदाहरण	99

पुस्तक के विषय में

भारत की कलीसियाओं में इस समय ***आत्मिक*** अगुवाई की एक बड़ी ज़रूरत है। इस पुस्तक में मसीही सेवकों, बाइबल कॉलेज के प्राध्यापकों, और कलीसियाओं के पासबानों को दिए गए संदेशों की अनेक श्रृंखलाएं शामिल हैं।

इन संदेशों को आसानी से पढ़ने योग्य बनाने के लिए इनकी मूल बोली की शैली में ही इन्हें फिर से प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस पुस्तक द्वारा प्रभु आपके हृदय से बात करे, और आपके सामने यह चुनौती रखे कि आप आज की युवा पीढ़ी के लिए एक आदर्श नमूना बनें - परमेश्वर के एक अनुकरणीय सेवक और वास्तव में एक आत्मिक अगुवे।

बैंगलोर **ज़ैक पूनन**

अक्टूबर 1999

अध्याय 1

परमेश्वर द्वारा बुलाया हुआ

एक *आत्मिक अगुवा,* सबसे पहले और सबसे बढ़कर, *परमेश्वर द्वारा बुलाया हुआ* होगा। उसका काम उसका *पेशा नहीं, उसकी बुलाहट* होगा।

कोई भी अपने आपको एक आत्मिक अगुवे के रूप में नियुक्त नहीं कर सकता। यह ज़रूरी है कि इस काम के लिए वह परमेश्वर द्वारा बुलाया हुआ हो (*इब्रा. 5:4 लिविंग*)। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे बदला नहीं जा सकता। अगला पद आगे बढ़ते हुए हमें बताता है कि स्वयं यीशु ने भी अपने आपको हमारा महायाजक नियुक्त नहीं किया है; उसे पिता ने नियुक्त किया है। अगर यह बात इस तरह से हुई है, तो, हमारी बुलाहट में, यह हमारे लिए और भी कितना ज़्यादा सच होना चाहिए।

आज की त्रासदी यह है कि भारत में *"मसीही सेवकों"* की एक विशाल बहुसंख्या अपनी *रोज़ी-रोटी कमाने के लिए* काम कर रही है। उनके लिए वह एक पेशा है। *वे परमेश्वर द्वारा बुलाए हुए **नहीं** हैं।*

एक *"पेशे"* और एक *"बुलाहट"* में बहुत फर्क़ होता है। अब मैं अपनी बात का अर्थ आपको समझाना चाहूँगा। मान लें कि एक अस्पताल में एक बीमार बच्चा है, और एक नर्स अपनी नौकरी के दौरान उसकी आठ घण्टे तक देखभाल करती है। फिर वह नर्स अपने घर चली जाती है और बच्चे के बारे में सब भूल जाती है। उस बच्चे में उसकी दिलचस्पी सिर्फ आठ घण्ट के लिए ही होती है। अब उसे दूसरे काम भी करने हैं जैसे पिक्चर देखने जाना या टैलिविज़न देखना आदि। उसे अगले दिन काम पर जाने तक बच्चे के बारे में सोचने की कोई ज़रूरत नहीं होती है। लेकिन उस बच्चे की माँ आठ घण्टे की पाली या ड्यूटी नहीं करती! अगर उसका बच्चा बीमार है तो वह पिक्चर देखने नहीं जा सकती। एक पेशे और एक बुलाहट के बीच यह फर्क़ होता है।

इस उदाहरण को अगर आप इस बात से जोड़ कर देखेंगे कि आप अपनी कलीसिया में विश्वासियों की देखभाल कैसे करते हैं, तो आपको एक नर्स और माँ के बीच का फर्क़ नज़र आ जाएगा।

1 थिस्सलुनीकियों के 2:7 में पौलुस ने कहा, *"परन्तु तुम्हारे बीच हमने ऐसी विनम्रता दिखाई जैसे एक दूध पिलाने वाली माँ अपने बच्चों का लालन-पालन कोमलता से करती है। इस प्रकार तुम्हारे प्रति ममता होने के कारण हमें प्रसन्नता हुई कि न केवल तुम्हें परमेश्वर का सुसमाचार सुनाएं, वरन् तुम्हारे लिए अपने प्राणों को भी दे दें क्योंकि तुम हमारे लिए अत्यंत प्रिय हो गए थे।"*

पौलुस ने उन मसीहियों को न सिर्फ परमेश्वर का सुसमाचार सुनाया बल्कि उनके लिए अपने *प्राणों* को भी दिया। जो भी सेवकाई इस तरह से नहीं की जाती, असल में वह मसीही सेवकाई ही नहीं है। पौलुस परमेश्वर की सेवा इस तरह से इसलिए कर सका क्योंकि उसके पास सेवकाई की *बुलाहट* थी।

उसने उसे अपना पेशा नहीं समझा था।

प्रभु की सेवा करना एक अद्भुत बात है। यह संसार में सबसे बड़ी बात है। इसकी तुलना संसार की किसी भी बात से नहीं हो सकती - लेकिन सिर्फ तभी जब आप *बुलाए* हुए हैं। इस सेवा को तुच्छ जानते हुए इसे एक *पेशा* नहीं बनाया जा सकता।

परमेश्वर ने मई 6, 1964 को मुझे उसकी सेवा के लिए तब बुलाया जब मैं भारतीय नौ-सेना में एक अधिकारी था। मैंने नौसेना अधिकारियों को अपना इस्तीफा दे दिया। लेकिन यह ऐसा ही था जैसे मूसा द्वारा फिरौन को इस्राएलियों को जाने देने के लिए कहना! भारतीय नौसेना मुझे छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। दो वर्ष के समयकाल और बार-बार आवेदन करने के बाद जब मुझे अंततः छोड़ा गया तो वह, एक चमत्कारिक रूप में, *परमेश्वर का ठहराया हुआ सिद्ध समय था।*

परमेश्वर द्वारा बुलाए जाने से मेरे जीवन में सब कुछ बदल गया।

सबसे पहली बात तो यह, कि अब मुझे इस बात से कोई फर्क़ नहीं पड़ने वाला था कि लोग मेरे बारे में या मेरी सेवकाई के बारे में क्या सोचते हैं, क्योंकि कोई और है जो मेरा स्वामी है, और मुझे सिर्फ उसे ही जवाब देना है।

दूसरा, मेरी सेवकाई में, किसी परीक्षा या विरोध का सामना करते समय मैं यह भरोसा कर सकता था कि परमेश्वर मेरे साथ खड़ा रहेगा और मुझ पर कृपा करेगा - और ऐसा अकसर होता रहता है।

तीसरा, अब मुझे इससे कोई फर्क़ नहीं पड़ने वाला था कि मुझे पैसा मिलता है या नहीं, या मुझे खाना मिलता है या नहीं। अगर मुझे खाना या पैसा मिलता है, तो यह भला और अच्छा है। और अगर मुझे खाना और पैसा नहीं मिलता, तो भी मेरे लिए भला ही है। सिर्फ इस वजह से मैं प्रभु की सेवा करना नहीं छोड़ सकता क्योंकि मुझे खाना और कपड़ा नहीं मिलता, क्योंकि मुझे परमेश्वर ने *बुलाया* है।

मैं अपनी बुलाहट को अपने से दूर नहीं कर सकता। मैं वेतन पाने वाला कर्मचारी नहीं हूँ जो वेतन या खाना न मिलने पर काम करना छोड़ सकता है। यह माँ और उसके बच्चे जैसा मामला है। एक नर्स को अगर वेतन न मिले तो वह काम करना छोड़ सकती है। लेकिन एक माँ ऐसा नहीं कर सकती। और वैसे भी, उसे वेतन नहीं मिलता! और अगर उसे खाना और वेतन न भी मिले तो भी वह अपने बच्चे की देखभाल करेगी! प्रेरितों ने प्रभु की इसी तरह सेवा की थी।

परमेश्वर द्वारा बुलाया जाना कितनी महिमा से भरी बात है!

अगर आप प्रभु की सेवा को एक *पेशे* की तरह करेंगे, ***तो जिस तरह से परमेश्वर चाहता है***, आप उस तरह से कभी सेवा नहीं कर सकेंगे। वह या तो एक बुलाहट होगी, या कुछ नहीं होगा। जगत का बाक़ी कोई भी काम एक पेशे की तरह किया जा सकता है। लेकिन एक माँ, बाप या प्रभु के सेवक का काम इस तरह नहीं किया जा सकता! ये एक बुलाहट का *नतीजा* होते हैं। पौलुस ने कुरिन्थियों के मसीहियों से कहा कि चाहे उनके दस हज़ार शिक्षक भी क्यों न हों, फिर भी उनका एक ही *पिता* है (1 कुरि. 4:15)। पौलुस अपने झुण्ड के लिए एक आत्मिक पिता और माता था। वह उसका पेशा नहीं उसकी बुलाहट थी। "तू इस बालक को ले जाकर मेरे लिए दूध पिलाया कर, और तुझे इसकी मज़दूरी मिलेगी," प्रभु ने मुझ से यह कहा (निर्ग.2:9)। यह बात सबसे पहले उसने मेरे स्वयं के शारीरिक बच्चों के लिए कही थी। और फिर यह बात उसने मेरे आत्मिक बच्चों के लिए भी कही थी। जब हम परमेश्वर के बच्चों की देखभाल करते हैं तो मनुष्य नहीं, परमेश्वर हमारी मज़दूरी के लिए ज़िम्मेदार होता है। अगर हम मनुष्यों की सेवा करते हैं, तो अपना वेतन पाने के लिए हम मनुष्यों से आशा रखें। लेकिन अगर हम प्रभु की सेवा करते हैं, तो हमारी ज़रूरतें पूरी करने के लिए *जिस तरह से भी प्रभु ठीक समझे,* हम सिर्फ प्रभु पर ही भरोसा रखें। और वही यह तय करे कि हमें हर महीने *कितना* मिलना है। प्रभु के सच्चे सेवक की एक गरिमा होती है।

लेकिन यह सम्भव है कि एक प्राचीन के रूप में, आपके अन्दर अपनी कलीसिया के प्रति ज़िम्मेदारी की ऐसी कोई भावना न हो। यह हो सकता है कि हरेक रविवार को आप सिर्फ बाइबल सिखा कर ही स्वयं को संतुष्ट कर रहे हों। लेकिन जब यीशु दोबारा आने पर आपकी सेवकाई का मूल्यांकन करेगा तो आपको यह जानकर हैरानी होगी कि आपकी पार्थिव सेवकाई सिर्फ लकड़ी, घास और भूसा ही है जो बस आग में झोंकने योग्य ही है (1 कुरि. 3:12,13)। सोचिए कि वह कितनी बड़ी त्रासदी होगी! अगर आप इस चेतावनी को आज गंभीरता से लेंगे, तो मसीह के न्यायासन के सामने आपका पछताना कम हो सकता है।

हममें से हरेक को अपना जीवन जीने और प्रभु की सेवा करने के बारे में मसीह के आने पर किसी-न-किसी हद तक पछताना पड़ेगा। लेकिन हम आज अपने तरीक़ों को जाँचने के द्वारा, और उनका न्याय करने के द्वारा अपना पछताना कम कर सकते हैं। हमें अपनी सेवकाई का मूल्यांकन करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उस दिन की ज्योति में वह कैसी नज़र आएगी।

"इन बच्चों को लें और इन्हें मेरे लिए दूध पिला", प्रभु कहता है, *"इन्हें मेरे लिए पाल-पोस कर बड़ा कर और मैं तेरी मज़दूरी तुझे दूँगा।"* वह मज़दूरी प्राथमिक तौर पर पैसा नहीं होगी। यह मेरा भरोसा है कि प्रभु हमारी पार्थिव ज़रूरतों को पूरा करता है क्योंकि उसने हमारी प्रतिदिन की रोटी के लिए हमें प्रार्थना करना सिखाया है और उसने यह पहले से ठहराया है कि सुसमाचार का प्रचार करने वाले सुसमाचार से ही जीएंगे। इसलिए, वही हमारी पार्थिव ज़रूरतों को पूरा करेगा। लेकिन इसके अलावा, इससे कहीं बढ़ कर आत्मिक प्रतिफल होगा।

पौलुस ने थिस्सलुनीकियों के मसीहियों को लिखा कि प्रभु के लौटने पर वे उसका मुकुट और आनन्द होंगे (1 थिस्स. 2:19)। जैसे एक पिता अपने बच्चों में आनन्दित होता है, वैसे ही उसका आनन्द उनमें पूरा हुआ था।

एक प्राचीन (आत्मिक पिता) का आनन्द तब पूरा होता है जब वह उन विश्वासियों को देखता है जो उसकी कलीसिया में पहले तो कच्चे धातु की तरह आए थे, लेकिन अब *परमेश्वर के जन* बन गए हैं। यह आनन्द एक शिल्पकार के उस आनन्द की तरह होता है जो एक आकारहीन पत्थर को एक मानवीय रूप देता है। इससे पहले कि उस पत्थर में से एक मनुष्य की आकृति प्रकट हो, उसे आवश्यक रूप से उस पत्थर की शिला को कई महीनों, बल्कि कई सालों तक तराशना पड़ता है! यही वह काम है जो परमेश्वर ने हमें भी

करने के लिए दिया है। हमें सिर्फ लोगों को सही बात बता कर ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। अगर उनके जीवनों में से मसीह की छवि उभर कर नहीं आई है, तो हमने कुछ भी हासिल नहीं किया है।

जब बच्चे अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं तो एक पृथ्वी का पिता भी आनन्दित होता है। वह भी यह नहीं चाहता कि उसके बच्चे उस पर हमेशा निर्भर रहें। एक सच्चा आत्मिक पिता भी ऐसा ही होगा। जैसे-जैसे उसके आत्मिक बच्चे बड़े और परिपक्व होते जाते हैं, वैसे-वैसे वह स्वयं को अलग हटाता रहता है कि उन्हें उसकी कम से कम ज़रूरत महसूस हो।

एक ऐसे घर के बारे में सोचें जिसमें बारह बच्चे हैं। आप यह सोच सकते हैं कि एक माँ बारह बच्चों की देखभाल कैसे कर सकती है जबकि आपकी पत्नी से तो दो बच्चे भी नहीं संभाले जाते! लेकिन यह अद्‌भुत बात है कि आगे जाकर बारह बच्चों की माँ के पास दो बच्चों की माँ से कम काम रह जाता है! यह इसलिए है क्योंकि बारह बच्चों की माँ अपने बड़े बच्चों को घर में काम करने के लिए प्रशिक्षित कर देती है। अंततः बच्चे सारा काम करने लगते हैं और माँ पूरी तरह से मुक्त हो जाती है! चरवाहों के रूप में हमारी कलीसियाओं में भी हमें यही करना चाहिए - अपनी ज़िम्मेदारी बाँट देनी चाहिए।

लेकिन हम ज़्यादातर कलीसियाओं में क्या देखते हैं? बोझ से दबे पासबान सब कुछ खुद ही करने की वजह से मनोवैज्ञानिक तौर पर टूट और बिखर रहे हैं। (बारह बच्चों की माँ को भी अगर सब कुछ खुद ही करना पड़ता तो वह भी मनोवैज्ञानिक तौर पर टूट और बिखर जाती।) बहुत सी कलीसियाएं ऐसे अनाथालयों की तरह हैं जहाँ सैंकड़ों बच्चे ज़मीन पर पड़े हैं, पैर पटक रहे हैं, और दूध की बोतल पकड़े हुए चीख़ और चिल्ला रहे हैं। एक ही व्यक्ति द्वारा की जाने वाली सेवकाई का यही परिणाम होता है। विश्वासी कभी बड़े ही नहीं होते क्योंकि उन्हें कभी कोई ज़िम्मेदारी ही नहीं दी जाती। मसीह की देह में, हरेक अंग को अपना काम करना है।

यीशु ने बारह लोगों को शिष्य बनाया, और मैं नहीं समझता कि एक समय में एक व्यक्ति प्रभावशाली ढंग से इससे ज़्यादा संख्या के लोगों को संभाल सकता है। इस हिसाब से, एक सौ बीस लोगों की कलीसिया में झुण्ड की देखभाल के लिए कम-से-कम दस पासबान होने चाहिए। "पासबानों" से मेरा अर्थ पूर्ण-कालिक सेवकों से नहीं है, लेकिन ऐसे भाई जो हालांकि सांसारिक काम-धंधों में लिप्त हैं, लेकिन जिनमें एक भेड़ों की देखभाल करने और उन्हें उत्साहित करने वाला चरवाहे का हृदय है।

आज फसल भरपूर है। लेकिन सच्चे चरवाहे थोड़े ही हैं। अगर आप प्रभु की सेवा करते हैं, तो यह इसलिए है क्योंकि परमेश्वर ने आपको उसकी सेवा करने के लिए बुलाया है, इसलिए नहीं क्योंकि आप अपनी रोज़ी-रोटी कमाना चाहते हैं या मनुष्य से आदर पाना चाहते हैं!

अध्याय 2

परमेश्वर को जानने वाला

एक आत्मिक अगुवा इस योग्य होता है कि वह परमेश्वर के मार्गों में दूसरों की अगुवाई कर सके क्योंकि वह परमेश्वर को व्यक्तिगत रूप से जानता है।

दानिय्येल 11:32,33 अंत के दिनों में पृथ्वी पर पाए जाने वाले दो प्रकार के प्रचारकों की बात करता है। ऐसे बहुत से लोग होंगे जो चिकनी-चुपड़ी बातें करेंगे और लोगों को अधर्म की तरफ मोड़ देंगे। दूसरी तरफ, ऐसे थोड़े ही लोग होंगे जो परमेश्वर को जानेंगे, जो लोगों को अंतर्दृष्टि देंगे और परमेश्वर के लिए महान् काम करेंगे।

आज, मसीही जगत में, ये दोनों प्रकार के प्रचारक पाए जाते हैं। ऐसे बहुत हैं जो अपने श्रोताओं को ख़ुश करने के लिए चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं। लेकिन जो परमेश्वर को जानते हैं, वे सत्य बोलते हैं, फिर चाहे उनके श्रोता प्रसन्न हों या अप्रसन्न, और चाहे मनुष्य उनकी प्रशन्सा करें या उन्हें अपमानित करें!

मनुष्य भेड़ों की तरह होते हैं। उनकी प्रवृत्ति भीड़ के पीछे चलने की होती है और वे अलग नज़र आने से डरते हैं। लेकिन अगर भीड़ ग़लत दिशा में जा रही हो, तो सभी भटक जाएंगे। आज यही परिस्थिति है। इसलिए, परमेश्वर कुछ ऐसे लोगों को ढूंढ रहा है जो उसके प्रति सच्चे हों और लोगों को उसके मार्गों में लेकर चलें। लेकिन अगर हमें भीड़ से अलग नज़र आने का साहस करना है, तो हमें परमेश्वर और उसके मन की बात - उसके विचार और उसके मार्ग मालूम होनी चाहिए।

भारत में जिन मसीही “अगुवों” से मैं पिछले तीस सालों में मिला हूँ, ऐसा लगता है कि उनमें से ज़्यादातर व्यक्तिगत रूप से परमेश्वर या उसके विचारों

को नहीं जानते। वे सिर्फ वही दोहराते रहते हैं जो वे किसी पश्चिमी मसीही पत्रिका या पुस्तक में पढ़ते हैं। हरेक दशक में ऐसा होता है कि अमेरिकी अगुवों द्वारा किसी एक ख़ास बात पर ज़ोर दिया जाता है, और वह बात बहुत लोकप्रिय हो जाती है। 1980 के दशक में वह एक बात थी, और अब वह कोई दूसरी बात होगी। और जैसे एक व्यक्ति को पहाड़ी क्षेत्रों में आवाज़ की गूंज सुनाई देती है, वैसे ही इन बातों पर दिया गया ज़ोर भारत और तीसरी दुनियाँ के चापलूसों में से गूंजता रहता है – ख़ास तौर जब वे सुसमाचारीय सम्मेलनों में अपने *"वक्तव्य"* प्रस्तुत करते हैं! अगर अमेरिकी *"अगुवे"* *"कलीसिया की उन्नति"* की बात लिखते हैं, तो भारतीय मसीही *"अगुवों"* में से भी *"कलीसिया की उन्नति"* की गूंज सुनाई देती है। अगर अमेरिकी *"10/40 खिड़की"* की बात करते हैं, तो भारतीय प्रचारक भी पूरी विश्वासयोग्यता के साथ *"10/40 खिड़की"* की बात दोहराते हैं। अगर पश्चिमी मसीही *"महाक्लेश से पहले कलीसिया के आकाश में उठाए जाने"* की बात सिखाते हैं, तो भारतीय बाइबल शिक्षक भी सिर्फ वही सिखाते हैं। वे पश्चिमी मसीहियों के सामने सवाल करने का कभी साहस नहीं करते!

लेकिन क्या परमेश्वर भारत में सीधे तौर पर कभी किसी से बात नहीं करता? क्या वह सिर्फ गोरी नस्ल के लोगों से ही बात करता है?

इस तरह नक़ल करने की वजह वह गुलामी की मानसिकता है जो तीसरी दुनियाँ के लगभग सभी मसीहियों में पाई जाती है। हम भारतीयों पर अंग्रेज़ों ने 200 साल तक राज किया। और हमारे लिए इस गुलामी की मानसिकता से आज़ाद होना मुश्किल है। लगभग सभी भारतीय मसीही ऐसा महसूस करते हैं कि गोरा व्यक्ति उनसे ज़्यादा श्रेष्ठ है, और उनसे ज़्यादा आत्मिक है – क्योंकि वह आग्रही और दबंग है, और उसके पास बहुत धन है।

एक बार मुझे एक काला अमेरिकी भाई मिला जिसने मुझे बताया कि अमेरिका के काले लोग हालांकि क़ानूनी तौर पर सौ साल पहले ही आज़ाद हो गए थे, लेकिन उनमें से ज़्यादातर में आज भी एक गुलाम की आत्मा पाई जाती है! वे जब एक गोरे व्यक्ति को देखते हैं, तो वे स्वयं को उससे नीचा महसूस करते हैं। मुझे लगभग हरेक भारतीय मसीही में बिलकुल यही मनोभाव नज़र आता है।

अगर मैं ईमानदारी से कहूँ, तो मैंने भारत आने वाले ज़्यादातर पश्चिमी प्रचारकों को (जिनसे मैं मिला हूँ), बहुत उथली और शारीरिक दशा में पाया है। वे परमेश्वर को नहीं जानते। लेकिन क्योंकि उनके पास फेंकने के लिए

बहुत सा पैसा है, इसलिए वे जहाँ कहीं जाते हैं, बड़े नायक बन जाते हैं। भारत में मसीही सम्मेलनों के विज्ञापनों को देखें। ज़्यादातर मामलों में, मुख्य वक्ता हमेशा ही एक पश्चिमी प्रचारक होता है। हमारे देश में मसीहत की कैसी दुर्दशा हो चुकी है? अगर यह सिर्फ धार्मिक मसीहियों के बारे में सच होता, तो बात समझ में आ सकती थी। लेकिन यह बात उनके लिए भी उतनी ही सच है जो *"नए जन्म"* और *"पवित्र आत्मा का बपतिस्मा"* पाए हुए होने का दावा करते हैं!

हमें इस गुलामी की मानसिकता से मुक्त होने की ज़रूरत है। लेकिन अगर कोई गोरा व्यक्ति आपको वेतन दे रहा है, तो आपके लिए उससे मुक्त हो पाना मुश्किल होगा! तब आपको मनुष्यों की सेवा करना छोड़ कर परमेश्वर की सेवा करने का फैसला करना पड़ेगा। और वैसे भी, आप किसके सेवक हैं? बाइबल हमें बताती है कि हमें मनुष्यों का दास नहीं होना है, क्योंकि हमें दाम चुका कर ख़रीदा गया है *(1 कुरि. 7:23)।*

आपके मन का आवेग सिर्फ परमेश्वर को व्यक्तिगत रूप से जानना ही हो। तब आप किसी पश्चिमी "अगुवे" की, या किसी भारतीय "अगुवे" की भी "गूंज" नहीं होंगे! आप किसी के गुलाम नहीं होंगे। आप परमेश्वर के एक जन होंगे। आत्मिक अधिकार सिर्फ *परमेश्वर के व्यक्तिगत ज्ञान* द्वारा ही आ सकता है।

मेरे भाइयों, मैं आपसे आग्रह करता हूँ, ऐसे पुरुष बनें जो परमेश्वर को जानते हैं। इससे आपका जीवन महिमामय और आपकी सेवकाई अधिकारपूर्ण बनेगी। आज सब बातों से बढ़ कर हमारे देश की यही ज़रूरत है।

परमेश्वर को जानने की बजाए बाइबल को जानना आसान होता है– क्योंकि बाइबल को जानने के लिए आपको कोई क़ीमत नहीं चुकानी पड़ती। उसके लिए आपको सिर्फ उसका अध्ययन करना पड़ता है।

आप अपने व्यक्तिगत जीवन में अनैतिक और अपने वैचारिक–जीवन में अशुद्ध हो सकते हैं और फिर भी बाइबल के बहुत अच्छे जानकार हो सकते हैं। आप एक बहुत मशहूर प्रचारक हो सकते हैं और फिर भी साथ–ही–साथ धन से बहुत प्रेम करने वाले हो सकते हैं। लेकिन आप परमेश्वर को जानने के साथ–साथ अपने जीवन में अनैतिक नहीं हो सकते। आप परमेश्वर को जानने वाले होने के साथ–साथ धन से प्रेम करने वाले नहीं हो सकते। यह असम्भव है। और यही वजह है कि ज़्यादातर प्रचारक परमेश्वर को जानने की बजाए बाइबल को जानने का आसान रास्ता अपना लेते हैं।

भाइयों, मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ: क्या आप सिर्फ बाइबल को जान लेने से ही ख़ुश हैं या आपके हृदयों में प्रभु को जानने की उत्कंठा भरी एक भूख है? *फिलिप्पियों 3:8-10* में प्रेरित पौलुस ने कहा कि उसकी सबसे बड़ी लालसा यही थी कि वह प्रभु को ज़्यादा बेहतर ढंग से जानें। प्रभु को जानने की तुलना में उसने बाक़ी सब बातों को तुच्छ जाना। इस एक अनमोल मोती के लिए उसने बाक़ी सारे मोतियों को त्याग दिया। पौलुस की सेवकाई का रहस्य उसके द्वारा गमलीएल की सैमिनरी में बाइबल अध्ययन करते हुए बिताए वर्ष नहीं थे, बल्कि *प्रभु के बारे में उसका व्यक्तिगत ज्ञान* था।

"अनन्त जीवन परमेश्वर को और यीशु मसीह को व्यक्तिगत रूप में जानना है" (यूहन्ना 17:3)। हमने अब तक अनन्त जीवन की व्याख्या शायद हमेशा के लिए स्वर्ग में रहने के रूप में की है। लेकिन यीशु ने इसकी व्याख्या इस तरह *नहीं* की थी। अनन्त जीवन का स्वर्ग में जाने या नर्क से बच जाने से *कोई सम्बंध नहीं है।* इसका सम्बंध *प्रभु को जानने से है।* परमेश्वर को एक अंतरंग और व्यक्तिगत रूप से जानना मेरे जीवन की धुन और हृदय का बोझ रहा है। मैं यह जानता हूँ कि मेरी सेवकाई में एक ईश्वरीय अधिकार तभी हो सकता है जब मैं व्यक्तिगत रूप से परमेश्वर को जानूँगा। इसलिए, हमारी सभी मण्डलियों में, मैंने लोगों की अगुवाई इस तरह ही करनी चाही है कि वे व्यक्तिगत रूप में स्वयं परमेश्वर को जान सकें।

इतिहास में जैसा पहले कभी नहीं था, बाइबल का आज ऐसा ज्ञान है। पैन्तेकुस्त के लगभग 1500 साल बाद तक, कहीं कोई छपी हुई बाइबल उपलब्ध नहीं थी। सिर्फ पिछली दो सदियों में ही बाइबल ऐसी आसानी से उपलब्ध हुई है। आज हमारे बीच में अनेक संस्करणों, शब्दकोशों और अध्ययन की सहायक-सामग्री की भरमार है।

लेकिन क्या आप यह समझते हैं कि बाइबल के ज्ञान में हुई इस वृद्धि से ज़्यादा मसीही तैयार हुए हैं? नहीं। अगर बाइबल का ज्ञान पवित्रता उत्पन्न कर सकता, तो आज हमारे बीच में इतिहास के सबसे पवित्र लोग रह रहे होते। लेकिन ऐसा नहीं है। अगर बाइबल के ज्ञान से पवित्रता पैदा हो सकती, तो स्वयं शैतान भी पवित्र होता - क्योंकि उससे ज़्यादा बाइबल का ज्ञान किसी के पास नहीं है।

आज हमारे बीच में बाइबल सिखाने वाले इतने ज़्यादा कॉलेज (सैमिनरी) हैं जो हज़ारों छात्रों को बाइबल सिखाते हैं। लेकिन क्या इन सैमिनरियों में जगत के सबसे ईश्वरीय लोग पाए जाते हैं? नहीं। बाइबल कॉलेजों के बहुत से स्नातक मूर्तिपूजकों से भी ज़्यादा बुरे हैं।

कुछ साल पहले, मेरी मुलाक़ात भारत के एक बड़े सुसमाचार-प्रचारीय (इवैन्जैलिकल) बाइबल कॉलेज के स्नातक से हुई जो अपनी कक्षा में *प्रथम* आया था। उसने मुझे बताया कि सैमिनरी में तीन साल गुज़ारने के बाद, उसकी आत्मिक दशा उस दशा से भी ज़्यादा बुरी हो गई जो उसकी सैमिनरी में जाने से पहले थी। तो उस सैमिनरी ने उसे क्या सिखाया? उसने उसे बाइबल *के बारे में* वास्तविक तथ्य और मसीहियत *के बारे में* सिखाया। ऐसे बाइबल कॉलेज की कक्षा में शैतान स्वयं प्रथम स्थान प्राप्त कर लेता।

उस युवक को व्याख्यात्मक भाषा-विज्ञान (हरमैन्यूटिक्स), या किसी विषय के बारे में 'श्रेष्ठ आलोचकों' के विचारों, या यूनानी भाषा में शब्दों के मूल अर्थ से क्या लाभ हुआ अगर वे उसके भीतर के क्रोध, कड़वाहट, वासनापूर्ण विचार या धन के लोभ को ही दूर नहीं कर सके थे? अपने नए-नए पाए हुए प्रमाण-पत्र से वह जल्दी ही एक कलीसिया का पास्टर बन जाएगा। लेकिन वह अपनी कलीसिया में लोगों को क्या सिखाएगा जहाँ सबसे बड़ी समस्याएं धर्म-ज्ञान सम्बंधी नहीं बल्कि *नैतिक* होंगी? इनमें से किसी भी क्षेत्र में वह उनकी कोई मदद नहीं कर सकेगा। भारत में परमेश्वर का काम इसी तरह नष्ट किया जा रहा है।

आप उसे जानने में अपने झुण्ड की अगुवाई सिर्फ तभी कर सकेंगे जब आप स्वयं उसे जानेंगे। अगर आपने अपने जीवन में पाप पर जय पाई है, तो आप अपने झुण्ड की भी पाप पर जय पाने में अगुवाई कर सकेंगे। तब अधिकार और सामर्थ्य के साथ वे भी बाहर निकल कर प्रभु की सेवा करने योग्य हो जाएंगे।

क्या आप यह सोचते हैं कि शैतान किसी के बाइबल के ज्ञान या उसके प्रमाण-पत्रों से प्रभावित होता है? बिलकुल भी नहीं। शैतान सिर्फ ऐसे पवित्र और नम्र व दीन लोगों से डरता है जो परमेश्वर को जानते हैं।

परमेश्वर हमारे अगुवाई करे कि हम अपने युवा भाइयों व बहनों की अगुवाई परमेश्वर को जानने में कर सकें।

अध्याय 3

परमेश्वर का भय
मानने वाला

एक आत्मिक अगुवा परमेश्वर का बड़ा भय मानने वाला होगा।

हम परमेश्वर को जितना ज़्यादा जानेंगे, हम उसका उतना भय मानेंगे। हम उससे *भयभीत* नहीं होंगे, बल्कि हममें उसका एक *आदरयुक्त भय* होगा।

भजन संहिता 34:11 में दाऊद कहता है, *"हे बालको आओ, मेरी सुनो: मैं तुम्हें परमेश्वर का भय मानना सिखाऊँगा।"*

लोगों को *परमेश्वर का भय मानना* सिखाना आसान काम नहीं है। उन्हें यह सिखाना ज़्यादा आसान है कि *रोमियों व इफिसियों की पुस्तकों* का विश्लेषण कैसे किया जाए!

अगर हमें लोगों को परमेश्वर का भय मानना सिखाना है, तो पहले हमें उसका भय मानना सीखना होगा। *परमेश्वर का भय* बुद्धि का आरम्भ है। एक व्यक्ति जो परमेश्वर का भय मानता है वह अपने झुण्ड को उस व्यक्ति से कहीं बढ़कर सिखा सकता है जो सिर्फ *बाइबल* ही जानता है। जिनमें परमेश्वर का भय नहीं है वे सिर्फ ज्ञान को आगे बढ़ा सकते हैं, बुद्धि को नहीं। ज्ञान एक व्यक्ति को *घमण्डी* बनाता है - जैसा कि हम *1 कुरिन्थियों 8:1* में पढ़ते हैं। लेकिन बुद्धि एक व्यक्ति को परिपक्व बनाती है और उसे यह सिखाती है कि वह अपने ज्ञान को प्रतिदिन की समस्याओं पर कैसे लागू करे। सिर्फ *बुद्धि* वाले लोग ही यीशु मसीह की कलीसिया का निर्माण कर सकते हैं।

परमेश्वर का भय मसीही जीवन का क-ख-ग है। अगर आपने अपने झुण्ड को पहले परमेश्वर का भय मानना नहीं सिखाया है, तो आपने उन्हें दूसरे विषय चाहे जितने भी सिखाए हों, आप अपने प्राथमिक काम में ही निष्फल हो गए हैं। तब आप एक ऐसे शिक्षक की तरह होंगे जिसने अपने छात्रों के

पढ़ना सीखने से पहले ही उन्हें भूगोल और इतिहास पढ़ाना शुरू कर दिया है! संसार का कोई भी शिक्षक ऐसी ग़लती नहीं करता।

परमेश्वर का भय मानना सीखना ऐसा ही है मानो पढ़ना सीखना। लेकिन कलीसिया के ज़्यादा प्राचीन अपने झुण्ड को पहले परमेश्वर का भय मानना नहीं सिखाते। इसी बात में यह प्रमाण मौजूद है कि इस संसार के लोग अपनी पीढ़ी में ज्योति की संतानों से ज़्यादा समझदार हैं।

जो सैमिनरी में से स्नातक हो कर आए हैं, उनसे मैं एक सवाल पूछना चाहता हूँ। क्या आपने वहाँ आपने परमेश्वर का भय मानना सीखा है, या आपको वहाँ से सिर्फ एक स्नातक होने का प्रमाण-पत्र ही मिला है?

मैं आपसे एक और सवाल पूछता हूँ। आप सैमिनरी में क्यों गए थे? क्या एक नौकरी पाने के लिए, या परमेश्वर का भय मानना सीखने के लिए? आपने एक सैमिनरी की तुलना में दूसरी को क्यों पसन्द किया था? क्या इसलिए क्योंकि वह सैमिनरी ज़्यादा प्रतिष्ठित थी? और क्या आपने यह जानते हुए भी उसमें प्रवेश लिया था कि वह *सुसमाचारी* (ईवैन्जलिकल) से ज़्यादा *उदारवादी* है? क्या आपकी कल्पना में यीशु ने उसकी सेवकाई की तैयारी के लिए अपने शिष्यों को वहाँ भेजा होता? आपमें से कितने ईमानदारी से यह कह सकते हैं कि आपने परमेश्वर का भय सीखने के लिए सैमिनरी में प्रवेश लिया था? शायद एक भी नहीं। क्या यह एक शोचनीय बात नहीं है?

क्या आप आज यह स्वीकार करेंगे कि आपने बुरे उद्देश्य से बाइबल कॉलेज में प्रवेश लिया था? अगर आप सच्चाई से इसका जवाब देने के लिए तैयार हैं, तो फिर आपके लिए एक बड़ी आशा है, क्योंकि परमेश्वर सच्चे लोगों से प्रेम करता है। और अब आप यह संकल्प करें कि जो ग़लती आपने की है, उसे दोहराने की ग़लती करने से आप दूसरों को रोकेंगे। पहले उन्हें परमेश्वर का भय मानना सिखाएं। जो ग़लतियाँ हमने की हैं, यह ज़रूरी नहीं कि हमारे बच्चे भी उन्हीं ग़लतियों को दोहराएं।

नीतिवचन 24:3,4 में, हमें बताया गया है कि एक घर बुद्धि से बनाया जाता है और ज्ञान से वह मनभावनी चीज़ों से भरा जाता है। यहाँ बुद्धि व ज्ञान के बीच के फर्क़ पर ध्यान दें। मैं बाइबल के ज्ञान के महत्व को कम नहीं कर रहा हूँ। बिलकुल नहीं। मैंने 40 साल तक बाइबल का अध्ययन किया है, और मेरे विचार से जितनी अच्छी तरह दूसरे लोग बाइबल को जानते हैं, वैस ही मैं भी जानता हूँ।

लेकिन मैं सबसे ज़्यादा *बुद्धि* की खोज में रहता हूँ। ईश्वरीय प्रेम संसार में सबसे बड़ी बात है। लेकिन ईश्वरीय प्रेम का मार्गदर्शन हमेशा *ईश्वरीय बुद्धि* से ही होता है। बुद्धि के बिना प्रेम हमेशा ही ख़तरनाक होता है।

प्रेम की तुलना एक बस में भरे पैट्रोल से की जा सकती है, और बुद्धि को उसका चालक माना जा सकता है। अपने झुण्ड को आगे ले जाने के लिए प्रेम की ज़रूरत है, लेकिन उनकी अगुवाई किस मार्ग में करनी है उसका फैसला करने के लिए आपको बुद्धि की ज़रूरत होगी।

बुद्धि प्राथमिक बात है। यह सम्भव है कि आपको बाइबल के ज्ञान के लिए 100 प्रतिशत अंक मिल जाएं लेकिन बुद्धि में शून्य ही मिले! यह ऐसा ही होगा जैसे एक विद्यार्थी को पी.टी. में सौ प्रतिशत मिला लेकिन गणित में शून्य। यह अच्छा होता कि उसे गणित में सौ प्रतिशत और पी.टी. में शून्य मिला होता क्योंकि आगे जाकर गणित पी.टी. से ज़्यादा उपयोगी साबित होगा। लम्बे सफर में, बुद्धि ज्ञान से बढ़कर होती है।

हमने देखा कि *ज्ञान* से कक्ष मनभावनी वस्तुओं से भर जाता है। ज्ञान वस्तुओं की तरह है- कुर्सियाँ, मेज़, पलंग आदि-जिन्हें हम कक्ष में सजाते हैं। इसलिए अगर आपके पास ज्ञान है लेकिन बुद्धि नहीं, तो आप एक ऐसे व्यक्ति की तरह हैं जिसने अपनी क़ीमती वस्तुएं ज़मीन के एक ख़ाली स्थल में सजा दी हैं! बहुत सी मूल्यवान कुर्सियाँ, मेज़ व पलंग एक ख़ाली जगह में रखे हुए हैं, लेकिन जो एक चीज़ नहीं है, वह है- *घर!* आप अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसा व्यक्ति उसके आसपास के लोगों के बीच एक हँसी का पात्र बन जाएगा। लेकिन आज मसीहियत में हम ज़्यादातर ऐसे ही अगुवे और प्रचारक पाते हैं। उनके पास ज्ञान है, लेकिन बुद्धि नहीं-*क्योंकि उनमें परमेश्वर का भय नहीं है।*

प्रभु के भय पर हम अब मुश्किल ही किसी प्रचारक को प्रचार करता सुनते हैं। और यही वजह है ज़्यादातर विश्वासी बुद्धिमान नहीं हैं और उनमें अन्य दूसरे बहुत से भय हैं।

अध्याय 4

परमेश्वर की सुनने वाला

एक आत्मिक अगुवा, प्रतिदिन, परमेश्वर की सुनने के लिए समय निकालेगा। एक वाक्यांश जो बाइबल के पहले ही अध्याय में बार-बार आया है वह यह है: *"फिर परमेश्वर ने कहा"*।

परमेश्वर ने जब बेडौल पृथ्वी की पुन: रचना की, तब उन छ: दिनों के हरेक दिन में उसने कुछ कहाँ और हर बार जब परमेश्वर बोला, तो वह ज़्यादा *बेहतर* जगह बनती गई।

इसलिए बाइबल के पहले ही पृष्ठ पर हम एक बहुत ही महत्वपूर्ण सत्य जान पाते हैं – *कि हमें वह सुनना चाहिए जो परमेश्वर* ***हरेक दिन*** *कहना चाहता है।* और अगर हम हरेक दिन हमें बताई गई बात के अधीन होंगे, तो हम बेहतर और ज़्यादा काम के मसीही बनते जाएंगे।

परमेश्वर जो कहना चाहता है उसे *सुनने* और सिर्फ बाइबल *पढ़ने* में बहुत फर्क़ है। याद रखें, कि यीशु को सूली पर चढ़ाने वाले वही लोग थे जो प्रतिदिन पवित्र शास्त्र पढ़ते थे। वे पवित्र शास्त्र तो पढ़ते थे लेकिन उन्होंने कभी परमेश्वर को उनके हृदय से बात करते नहीं सुना था (देखें, प्रेरितों. 13:27)। यही ख़तरा हमारे भी सामने रहता है। और फिर, हम भी वैसे ही अंधे हो सकते हैं जैसे वे थे। उत्पत्ति अध्याय 1 हमें यह भी सिखाता है कि परमेश्वर हमसे *प्रतिदिन* बात करना *चाहता* है।

लेकिन ज़्यादातर मसीही अगुवे परमेश्वर की बात नहीं सुनते। वे सिर्फ मनुष्यों की लिखी बातें ही पढ़ते हैं!

अगर आप सिर्फ उन्हीं बातों का प्रचार करते हैं जो आपने दूसरे मनुष्यों को बोलते सुना है, तो यह एक बड़ी दु:खद बात है क्योंकि मनुष्य का शब्द कभी

भी ऐसा कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता जो अनन्त हो। सिर्फ परमेश्वर का *बोला* गया शब्द ही *अनन्त* फल उत्पन्न करता है-जैसा कि हम *यशायाह 55:11* में पढ़ते हैं।

उत्पत्ति 1 में, हम पढ़ते हैं कि जब भी परमेश्वर बोला, अलौकिक बातें हुईं। अगर हम भी उन्हीं बातों का प्रचार करें जो परमेश्वर ने पहले हमारे हृदयों में बोला है, तो हमारी सेवकाइयों में भी ऐसा ही हो सकता है। पौलुस ने तीमुथियुस से कहा कि अगर वह दूसरों को और स्वयं को बचाना चाहता है, तो उसे *पहले* अपनी शिक्षा पर ध्यान देने की ज़रूरत है *(1 तीमु. 4:16)*। अपने आपको धोखा देने से बचने का सिर्फ एक ही तरीक़ा है कि हम वह सुनें जो परमेश्वर हमसे कहना चाहता है। अगर आप वह नहीं सुनते जो परमेश्वर आपसे कहना चाहता है, तो आप नीचे दिए गए तीन तरीक़ों में से एक द्वारा प्रचार करेंगे:

1. आप यह पता लगाएंगे कि इस समय संसार में तथाकथित 'महान् मसीही प्रचारक' क्या कह रहे हैं - ख़ास तौर पर अमेरिका में, जहाँ से भारत में मसीही काम का ज़्यादातर पैसा आता है! (मैंने 'तथाकथित महान् प्रचारक' इसलिए कहा है क्योंकि वे परमेश्वर की नज़र में 'महान्' *नहीं* हैं)। आप उनकी किताबें पढ़ेंगे और जो वे कह रहे हैं आप वही दोहराएंगे। जब आप यह जानेंगे कि इन दिनों मसीही जगत में यह ख़ास विषय लोकप्रिय हो गया है, तो आप उसी के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा बोलने का फैसला करेंगे। आपका परख-न-कर-सकने वाला झुण्ड बहुत प्रभावित हो जाएगा और आपको बहुत पढ़ने वाला और आत्मिक मन-मिज़ाज वाला व्यक्ति मान लेगा!

या

2. आप बाइबल की विषय-वस्तुओं का अध्ययन एक शैक्षणिक विद्वता के साथ कर लेंगे और उन्हें इस तरह पढ़ाएंगे जैसे एक कॉलेज का प्राध्यापक रसायन-शास्त्र पढ़ाता है! और हाँ, एक व्यक्ति को बाइबल के अध्ययन में डॉक्ट्रेट मिल जाना रसायन-शास्त्र में डॉक्ट्रेट मिलने से ज़्यादा आसान है! आज निम्न स्तर के बहुत से बाइबल कॉलेजों द्वारा "उपाधि-के-भूखे" प्रचारकों व पास्टरों को कुछ सौ रुपयों में मानक "डॉक्ट्रेट" की उपाधियाँ बाँटी जा रही हैं! लेकिन अगर आप धर्मज्ञान में एक डॉक्ट्रेट की डिग्री अर्जित भी कर लेते हैं, तो उससे यही साबित हो सकेगा कि आप एक होशियार व्यक्ति हैं। *फिर भी यह हो सकता है कि आप न तो परमेश्वर को और न उसके वचन को जानते हों।*

या

3. आप यह जानने कि कोशिश करेंगे कि आपके झुण्ड को क्या सबसे ज़्यादा

स्वीकार्य हो सकता है- क्योंकि आप उसके बीच लोकप्रिय होना चाहते हैं। आप फिर उन व्यापारियों की तरह होंगे जो सर्वेक्षण कर यह पता लगाते हैं कि *ज़्यादातर* लोग क्या पसन्द कर रहे हैं। आजकल ज़्यादातर पास्टर यही प्रचार करते हैं। और पुराने नियम में *सभी झूठे नबी* भी इसी तरह प्रचार करते थे- और वे बहुत फलते-फूलते भी थे! हरेक झूठा नबी यह पता लगाने की कोशिश करता था कि इस्राएल की प्रजा क्या सुनना चाहती थी, और फिर वे वही प्रचार करते थे। इस तरह वे लोगों के बीच काफी लोकप्रिय होकर काफी धन-सम्पत्ति बना लेते थे। आज मसीही जगत में भी ऐसे बहुत से झूठे नबी हैं। लेकिन इस्राएल का हरेक सच्चा नबी लोगों में अप्रिय था क्योंकि वह यहूदियों को वही कहता था जो उन्हें सुनने की ***ज़रूरत*** थी, वह नहीं जो वह सुनना *चाहते* थे।

यीशु ने एक बार मार्था को मरियम जैसा न होने के लिए झिड़का था क्योंकि वह मरियम की तरह बैठ कर उसे बोलते हुए नहीं सुनती थी, बल्कि काम में बहुत व्यस्त रहती थी। हमारे प्रभु ने फिर यह कहा था कि मरियम जो कर रही थी, जीवन में *सिर्फ* वही एक बात ज़रूरी थी (लूका 10:42)। हम सब में वही मनोभाव होना चाहिए जो शमुएल में था, जिसने कहा, "बोल, प्रभु, तेरा दास सुनता है।"

हम बाइबल के पहले ही पृष्ठ पर क्या देखते हैं? जब भी परमेश्वर बोला, तो फौरन कुछ हासिल हुआ: ज्योति उत्पन्न हुई, जल में से पृथ्वी प्रकट हुई, वृक्ष, मछलियाँ, पशु आदि रचे गए।

यशायाह 55:10,11 हमें बताता है कि जो शब्द परमेश्वर के मुख से निकल कर जाता है, वह कभी परमेश्वर के उद्देश्य को *प्राप्त किए* बिना वापिस नहीं लौटता है, और जिस काम के लिए उसे भेजा गया है वह उसे *सफलतापूर्वक पूरा करता* है।

इन पदों में उन दो शब्दों पर ध्यान दें जिन्हें संसार के सभी लोगों में बहुत मूल्यवान माना जाता है-"प्राप्त करना" और "सफल होना"।

हम सभी अपने जीवनों में कुछ *प्राप्त करना* चाहते हैं और हम सभी *सफल होना* चाहते हैं। लेकिन जीवन छोटा होता है और हमारे पास सफल होने और प्राप्त करने के सारे तरीक़े आज़माने का वक़्त नहीं है-ख़ास तौर पर आत्मिक मामलों में। हमें प्रभु का काम करने के लिए कोई ऐसा तरीक़ा नहीं आज़माना चाहिए कि 20 साल गुज़रने के बाद हमें यह पता चले कि *वह* तो परमेश्वर

का तरीक़ा नहीं था, और हम तो ग़लत रास्ते पर निकल गए थे! *अगर हम उस शब्द को सुनें जो परमेश्वर बोलता है*, तो हम इस तरह समय नष्ट करने से बच सकते हैं। इससे *हमेशा* सफलता मिलेगी और हम कुछ प्राप्त करेंगे।

मैं ऐसे व्यक्ति को सुनना चाहूँगा जो परमेश्वर की सुनता है –क्योंकि ऐसा व्यक्ति मुझे पाँच मिनट में उससे ज़्यादा सिखा सकता है जो ऐसे धर्मज्ञानी (जिनके पास डिग्रियों की एक लम्बी पूँछ होती है) घण्टों में भी नहीं सिखा सकते। यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला परमेश्वर के बारे में लोगों को प्राध्यापक गमलीएल या यहूदी महासभा के किसी भी सदस्य से ज़्यादा सिखा सकता था!

जब आप परमेश्वर को सुनेंगे तो आप उन बातों का प्रचार नहीं करेंगे जो आपने मसीही पुस्तकों या पत्रिकाओं में पढ़ा होगा या मसीही टेप रिकॉर्डिंग में सुनी होगी। वह मनुष्य जो परमेश्वर की सुनता है वह शैक्षणिक ज्ञान या अपने अध्ययन में से नहीं बल्कि प्रकाशन में से बोलता है। ऐसा मनुष्य जो पढ़ता है, पहले उसका *अनुभव* करता है – और फिर उसे *अपने जीवन में से* बोलता है।

जब आप अपने मस्तिष्क में से बोलेंगे, तो वह सिर्फ लोगों के मस्तिष्क में ही जाएगा। लेकिन जब आप अपने हृदय में से बोलेंगे तो वह सीधा उनके हृदय में जाएगा और उनके जीवन बदल देगा। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप अपने संदेश तैयार न करें या बोलते समय आपके पास लिखित मुद्दे न हों। आप लिखे हुए में से बोलते हैं या नहीं यह इस बात पर निर्भर होगा कि आपकी *स्मृति* कैसी है, इस बात पर नहीं कि आप कितने *आत्मिक* हैं। मैं जो कह रहा हूँ वह यह है कि आप जो बोलें वह आपके *जीवन* और आपके हृदय में से आना चाहिए।

आज हमारे बीच में उदारवादी धर्मज्ञान और सुसमाचारीय धर्मज्ञान के बाइबल कॉलेज हैं। लेकिन उन दोनों के बीच फर्क़ क्या है? एक में, जो सूचना एक मस्तिष्क में से दूसरे मस्तिष्क में संचारित हो रही है वह *ग़लत* है, जबकि दूसरे में संचारित होने वाली सूचना *सही* है! लेकिन अगर आत्मिक रीति से बात करें, तो यह ज़रूरी नहीं कि *सुसमाचारीय* कॉलेज *उदारवादी* से बेहतर होगा। दोनों प्रकार की सैमिनरियों में प्राध्यापक और छात्र दोनों ही धन से प्रेम करने वाले और अपनी लालसाओं के गुलाम हो सकते हैं।

यीशु ने अपने शिष्यों को ऐसे नहीं सिखाया था। वह इसलिए नहीं आया था कि हमारे पास *परमेश्वर के विषय के ज्ञान* (थियोलॉजी) की ज़्यादा जानकारी हो। वह हमारे *चरित्र* उसके जैसे बनाने आया था।

यीशु ने अपने शिष्यों को थियोलॉजी से ज़्यादा चरित्र के बारे में सिखाया। आप अपने बारे में क्या कहते हैं? क्या आप अपने झुण्ड को शरीर की

लालसाओं, आँखों की अभिलाषाओं और जीविका के घमण्ड पर जय पाने के बारे में सिखाते हैं? हमारी कलीसियाओं में ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो यह जानने के लिए हमारी तरफ देख रहे होते हैं कि परमेश्वर उनसे क्या कह रहा है। एक रविवार के बाद दूसरे रविवार, उनको प्रचार करना एक गंभीर ज़िम्मेदारी है। अगर मैं आपकी जगह होता तो मुझे बहुत डर लगता, क्योंकि जो कुछ भी हम लोगों से बोलते हैं, उसके लिए हम परमेश्वर के सामने जवाबदार हैं। जितने भी संदेश हमने आज तक दिए हैं, एक दिन हमें उनमें से हरेक का लेखा देना है – हमने *क्या* बोला, हमने *क्यों* बोला, हमने *कैसे* बोला। अगर इस मामले में आप अपनी सेवकाई के प्रति गंभीर होंगे, तो आपकी सेवकाई जड़-मूल से बदल जाएगी।

आज 20 साल से ज़्यादा समय हो गया है, मैंने अपनी सेवकाई को परमेश्वर की ज्योति में परखा है। परमेश्वर के वचन का प्रचार करने के बाद, मैं प्रभु से पूछता हूँ कि क्या मैंने कुछ ऐसा बोला है जो ग़ैर-ज़रूरी था, जिसमें मैंने लोगों का समय बर्बाद किया, जिसमें मैंने अपने लिए आदर पाना चाहा, आदि। इस तरह मैंने धीर-धीरे इन बुराइयों से अपने आपको शुद्ध किया है, और लोगों को निराश नहीं किया है और न ही ऐसे प्रचार किए हैं जो उनके 'ऊपर से चले गए' हैं। एक संदेश का प्रचार *करने के बाद*, क्या आप परमेश्वर की बात सुनते हैं? क्या आप उससे पूछते हैं कि वह आपको यह दिखाए कि आप और बेहतर तरीक़े से कैसे कर सकते थे? इस वास्तविकता का, कि दूसरे लोगों ने उसे एक अच्छा संदेश माना है, कोई महत्व नहीं है। परमेश्वर ने इसके बारे में क्या सोचा है? यह एक महत्वपूर्ण सवाल है।

आप में से बहुत ऐसे हैं जिनकी बात को बहुत लोग सुन रहे हैं, आपकी कलीसियाओं में, एक रविवार के बाद दूसरे रविवार। क्या आप अनन्त जीवन के लिए उनके जीवनों को प्रभावित कर रहे हैं? क्या आपने जीवन के मूल्यों के प्रति उनकी सोच-समझ को बदला है कि वे अब सांसारिक नहीं बल्कि स्वर्गीय हैं? आपको स्वयं से यह सवाल पूछते रहना चाहिए।

जब हमें कुछ *ज़रूरी फैसले* करने होते हैं, तो हमें परमेश्वर की बात सुनने के लिए ख़ास तौर पर सचेत रहना चाहिए।

परमेश्वर बहुत से तरीक़ों से हमसे बात करता है।

प्राथमिक रूप में तो वह हमसे अपने वचन के द्वारा बात करता है। परमेश्वर के वचन में अगर एक बात स्पष्ट लिखी है, तो हमें उसके बारे में

जानने के लिए प्रार्थना करने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि वह पहले ही प्रकट रूप में है।

परमेश्वर हमारी *परिस्थितियों* द्वारा भी हमसे बात करता है। हमारे प्रभु के पास हरेक द्वार की चाबी है (प्रका. 1:18) और जब वह किसी द्वार को खोल देता है तो कोई उसे बंद नहीं कर सकता, और अगर वह उसे बंद कर देता है तो कोई उसे खोल नहीं सकता (प्रका. 3:8)। इसलिए हमारी परिस्थितियाँ अक्सर इस बात का एक संकेत होती हैं कि परमेश्वर हमें एक ख़ास मार्ग में आगे जाने देना चाह रहा है या नहीं। जो द्वार परमेश्वर ने नहीं खोला है हमें उसे पीट-पीट कर खुलवाने की कोई ज़रूरत नहीं होती। हाँ, जब हम किसी द्वार को बंद देखें तो हमें प्रार्थना ज़रूर करनी चाहिए। लेकिन लगातार प्रार्थना के बाद भी वह द्वार अगर बंद ही रहता है, तो हो सकता है कि परमेश्वर की यह इच्छा ही नहीं है कि हम उस द्वार में से होकर जाएं। अगर ऐसा है तो परमेश्वर से हमें वह दिखाने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए, और अगर नहीं तो उस द्वार के खुलने के लिए और आग्रही प्रार्थना करनी चाहिए (लूका 11:5-9)।

परमेश्वर हमारे *परिपक्व और ईश्वरीय भाइयों के परामर्श द्वारा* भी बात करता है। ऐसे लोग बहुत से अनुभवों में से गुज़रे होते हैं, और वे हमें ऐसे फंदों में फंसने से बचा सकते हैं जिनकी हमें कोई जानकारी नहीं होती। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि हमें आँखें बंद रख कर उनकी बात मान लेनी है, लेकिन ईश्वरीय सलाह हमारी मदद कर सकती है।

परमेश्वर हमसे तब भी अकसर बात कर सकता है *जब हम दूसरे विश्वासियों के साथ संगति करते हैं।* इस तरह, वह मसीह के देह के दूसरे-अंगों पर हमारी निर्भरता, और उसके वचन का प्रकाशन पाने के लिए भी हमारी उन पर निर्भरता के बारे में हमें सिखाता है।

परमेश्वर के पास हमें बताने के लिए हमेशा कुछ महत्वपूर्ण होता है, फिर चाहे उस समय हम किसी परीक्षा में से या किसी बीमारी में से ही क्यों न गुज़र रहे हों।

परमेश्वर दूसरों की निष्फलताओं में से भी चेतावनी देता है। उदाहरण के तौर पर, अगर हम किसी ऐसे सेवक के बारे में सुनते हैं जो पाप में गिर गया है, तो परमेश्वर से यह पूछना अच्छा है कि उसमें से हमारे सीखने के लिए कौन से पाठ हैं (क्योंकि हम सब निर्बल हैं) और यह कि हम अपने आपको कैसे बचाए रख सकते हैं।

परमेश्वर हमसे तब भी बात कर सकता है जब हम कहीं पर हो रही *दुष्टता* या किसी *दुर्घटना* का समाचार पाते हैं। यीशु ने अपने समयकाल के

लोगों से उस समय मन फिराने के लिए कहा जब उन्होंने यह सुना कि पिलातुस ने कुछ यहूदियों को पशुओं की तरह काट दिया है, और यह कि शिलोम की मिनार के गिरने से कुछ लोग उसके नीचे दब कर मर गए हैं– क्योंकि इस तरह की दुर्घटनाएं किसी के साथ भी हो सकती हैं (लूका 13:1–4)।

फिर भी, मैं एक बात में चेतावनी देना चाहता हूँ, कि परमेश्वर की बात सुनने कि ऐसी कोशिश से बचें जिसमें आप एकाएक बाइबल खोलते ही नज़र में आने वाले पहले ही पद को अपने लिए परमेश्वर की बात मान लेते हैं!

अगर आप किसी लड़की से विवाह करना चाहते हैं, तो उसकी पुष्टि के लिए आप बाइबल का कोई पद चाहते हैं। और अगर वह आपको नहीं मिलता तो ज़्यादा संभावना यही है कि आप तब तक बाइबल को इसी तरह खोलते रहेंगे जब तक आपको आपका मनचाहा पद नहीं मिल जाता! आप इस तरह अपने आपको धोखा दे सकते हैं।

मैंने एक व्यक्ति के बारे में सुना जो इसी तरह अपने लिए परमेश्वर की इच्छा की खोज कर रहा था, और उसने एकाएक बाइबल खोली और यह लिखा हुआ पाया, *'वह गया, और उसने जाकर फाँसी लगा ली (मत्ती 27:5)!* उसने फिर बाइबल खोली और यह लिखा पाया, *'जा, और यही कर' (लूका 10:37)!* उसने तीसरी बार बाइबल खोली और वहाँ ऐसा लिखा था, *'जो तुझे करना है, जल्दी कर' (यूहन्ना 13:27)!* इस घटना ने परमेश्वर की इच्छा को इस तरह जानने की बीमारी से उसे हमेशा के लिए चंगा कर दिया!

लेकिन ऐसे समय हो सकते हैं जब हम बहुत दबाव में होते हैं, तब यह हो सकता है कि परमेश्वर इस तरह यकायक बाइबल खोलते ही हमें किसी बात से उत्साहित कर दे। तो यह तरीक़ा *उत्साहित* होने के लिए तो सही हो सकता है, लेकिन *मार्गदर्शन* पाने के लिए यह सही नहीं है।

प्रिय भाइयो, मैं आपको परमेश्वर की आवाज़ सुनने की आदत डालने के लिए उत्साहित करना चाहता हूँ। *यह वह सबसे महत्वपूर्ण आदत है जिसे आप विकसित कर सकते हैं।*

अध्याय 5

मसीह की देह
द्वारा संतुलित किया हुआ

एक आत्मिक अगुवा यह जान लेगा कि उसकी सेवा असंतुलित है। तब वह अपनी सेवकाई का संतुलन मसीह की देह के अन्य अंगों की सेवकाई में से पा लेगा।

मसीह की देह की तुलना एक *अस्पताल* से की जा सकती है। एक व्यक्ति जब बीमार होता और अस्पताल जाता है, तो अस्पताल में उसकी मदद करने के लिए अनेक विभाग होते हैं। उसे शायद एक इंजैक्शन, फिज़ियोथैरेपी, या फिर शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) की ज़रूरत हो सकती है। उसे आँख के डॉक्टर या कान के डॉक्टर के पास जाने की ज़रूरत हो सकती है। इस तरह, एक अस्पताल में विभिन्न विभाग होते हैं। आँख का डॉक्टर अपना समय सिर्फ लोगों की आँखें देखने में ही ख़र्च करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह देह के दूसरे अंगों को महत्वपूर्ण नहीं मानता, बल्कि इसलिए क्योंकि वह आँख का विशेषज्ञ है।

मसीह की देह में भी, हरेक विश्वासी की अलग बुलाहट और अलग वरदान हैं, और अपने आप में हरेक असंतुलित है। इस पृथ्वी पर चलने वालों में सिर्फ प्रभु यीशु मसीह ही एक ऐसा व्यक्ति था जो पूरी तरह से संतुलित था। हममें से बाक़ी सब-जो हममें सबसे बेहतर हैं वे भी-असंतुलित हैं। हम अपना संतुलन तभी पाते हैं जब हम प्रभु के अस्पताल के विभिन्न विभागों में दूसरे भाई-बहनों के साथ मिलकर काम करते हैं, इस तरह इस अस्पताल में व्यक्तिवाद के लिए कोई जगह नहीं है!

एक अच्छे अस्पताल में लोगों की अलग-अलग ज़रूरतें पूरी करने के लिए बहुत से विभाग होते हैं। इसी तरह, मसीह की देह में भी, लोगों की मदद करने

के लिए बहुत सी सेवकाइयाँ और आत्मिक वरदान होते हैं। किसी मण्डली के पास पवित्र-आत्मा के *सभी* वरदान नहीं होते। लेकिन मसीह की पूरी देह में, वे सब मौजूद हैं।

हमें यह मालूम होना चाहिए कि मसीह की देह में *हमारी अपनी* विशेष बुलाहट क्या है।

यह संसार आत्मिक रीति से बीमार लोगों से भरा पड़ा है। और ऐसा कोई नहीं है जिसका मामला आशाहीन हो। हरेक प्रभु द्वारा पूरी तरह चंगा किया जा सकता है। जिस सुसमाचार का प्रचार हम करते हैं, उसकी यही ख़ुश-ख़बरी है। सबसे घिनौना पापी और सबसे विकृत व्यक्ति भी यीशु के अस्पताल में चंगा हो सकता है। एक *अच्छा* अस्पताल गंभीर रूप में बीमार किसी व्यक्ति को वापिस नहीं लौटाएगा। छोटे अस्पताल ऐसा करते हैं क्योंकि वे गंभीर बीमारियों से निबटने के लिए सुसज्जित नहीं है। इसी तरह एक अच्छी कलीसिया भी सबसे बड़े पापी को यह मान कर वापिस नहीं लौटाएगी कि उसके लिए अब कोई आशा नहीं है! एक अच्छी कलीसिया सबसे घिनौने पापी को भी सबसे श्रेष्ठ संत के रूप में बदल सकती है। हम कलीसिया की तुलना एक *मानवीय* देह से भी कर सकते हैं। मानवीय देह में भी, हरेक अंग का एक काम होता है, और वह अंग सिर्फ अपना काम करने पर ही अपना पूरा ध्यान देता है। लेकिन जिन अंगों के दूसरे काम हैं, वह उनको भी सराहता है, मूल्यवान जानता है, और उनके साथ मिलकर काम करता है। जब हम मसीह की देह में दूसरी सेवकाइयों के साथ मिलकर काम करते हैं, तब ऐसा ही होना चाहिए।

पहला कुरिन्थियों अध्याय 12 में, आत्मा के वरदानों को मसीह की देह में काम करने को चित्रित करने के लिए पवित्र आत्मा ने आँख, कान, हाथ और पैर के उदाहरण इस्तेमाल किए हैं।

जब आप मुझे बोलते हुए सुनेंगे, तो आप यह पाएंगे कि मैं बाइबल की कुछ बातों पर ज़ोर देकर उन्हें बार-बार दोहराता हूँ। यह इसलिए है क्योंकि प्रभु ने मुझे यही *बोझ* दिया है। मैं इसी सेवकाई के साथ चिपक गया हूँ क्योंकि मुझे मालूम है कि यही वह सेवकाई है जिसमें मैं प्रभु के लिए सबसे उपयोगी हो सकता हूँ। अगर मैं कुछ और करने जाऊँगा, तो मैं प्रभु की योजना को निष्फल करूँगा। लेकिन मैं दूसरी सेवकाइयों के विरोध में नहीं हूँ, मैं उन्हें बहुत मूल्यवान मानता हूँ। पेट हाथ को बहुत मूल्यवान जानता है, लेकिन वह कभी हाथ का काम करने की कोशिश नहीं करता। जैसे, वह कभी प्लेट में से भोजन उठाने की कोशिश नहीं करता। यह काम वह हाथ को करने देता है, और फिर

वह उस खाने को पचाने का काम करता है जिसे हाथ ने उठाकर उसके अन्दर पहुँचाया है! इस चित्रण द्वारा यह देखा जा सकता है कि हम मसीह की देह में कैसे एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करते हैं।

ज़्यादातर विश्वासियों ने देह में विभिन्न सेवकाइयों के इस सत्य को नहीं देखा है। लेकिन अगर आप इस सत्य को नहीं देखते, तो आप कभी उन बातों को पूरा नहीं कर पाएंगे जो परमेश्वर हासिल करना चाहता है।

यह अच्छा होगा अगर हममें से हरेक अपने मन में इस बारे में स्पष्ट हो कि परमेश्वर ने उसे क्यों बुलाया है। *जो बोझ प्रभु हमारे हृदय में हमें देता है, अकसर वही उसकी देह में हमारी सेवकाई का संकेत होता है।*

जहाँ तक मेरा सम्बंध है, मैं बहुत सालों से इस बारे में एकदम स्पष्ट हूँ कि देह में ***मेरी*** सेवकाई क्या है, और यह कि परमेश्वर इसमें क्या चाहता है कि मैं किन बातों पर ज़ोर दूँ। इस स्पष्टता ने मेरे जीवन में बहुत विश्राम, और बहुत आज़ादी भी दी है। कोई भी अब मुझे मेरी सेवकाई से अलग नहीं कर सकता, तब भी नहीं, जब वे मुझ पर असंतुलित होने का आरोप लगाते हैं!

पुराने नियम का कोई भी नबी अपनी सेवकाई में संतुलित नहीं था। सिर्फ कूटनीति वाले प्रचारक ही *'संतुलित'* बने रहने की खोज में लगे रहते हैं। सारे नबी हमेशा असंतुलित ही रहे। वे बार-बार एक ही बात पर ज़ोर देते रहे - क्योंकि उनकी पीढ़ी में इस्राएल या यहूदा की वही ज़रूरत थी-और परमेश्वर ने वही एक *बोझ* के रूप में उनके हृदयों में रखा था।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ हममें से हरेक प्रभु की *सेवा शुरू करते ही* यह जान लेगा कि हमारा वरदान या हमारी बुलाहट क्या है। मेरा नया जन्म हो जाने के बाद, मुझे अपनी सेवकाई के बारे में स्पष्ट होने में 15 साल लगे। यह ज़रूरी नहीं कि आपको भी इतना ही लम्बा समय लगे; हो सकता है कि आपका समय कम हो। समय निश्चित करने का मामला आपको परमेश्वर पर छोड़ देना होगा। लेकिन आपको एक बात स्पष्ट रूप में समझ लेने की ज़रूरत है कि मसीह की देह में *आपकी* एक विशिष्ट और अनोखी सेवकाई है जिसे और कोई पूरा नहीं कर सकता। और वह सेवकाई एक संतुलित सेवकाई कभी नहीं होगी। वह *असंतुलित* होगी। आपको अपना संतुलन उन लोगों के साथ मिलकर पाना होगा जिनकी देह में भिन्न् सेवकाईयाँ हैं। परमेश्वर इसी तरह से हमें नम्र व दीन रखता है-हमें दूसरों पर निर्भर कर देने के द्वारा। प्रभु की स्तुति हो!

सब अपने जीवन के किसी-न-किसी क्षेत्र में मज़बूत होते हैं, लेकिन दूसरे क्षेत्रों में कमज़ोर होते हैं-जैसे एक छात्र अंग्रेज़ी में अच्छा लेकिन गणित में

कमज़ोर हो सकता है। लेकिन हमें यह मालूम होना चाहिए कि हम किस क्षेत्र में कमज़ोर हैं और फिर हमें उस क्षेत्र को मज़बूत करने के लिए काम करना चाहिए। आपकी मण्डली *सुसमाचार प्रचार करने में* अच्छी लेकिन *पवित्रता में* कमज़ोर हो सकती है। अगर ऐसा है, तो आपको मालूम हो जाएगा कि आपकी मण्डली में किस तरह की सेवकाई की ज़रूरत है।

अपने काम की सफलता का मूल्यांकन कभी अपनी लोकप्रियता द्वारा न करें। यीशु ने उन सभी लोगों को धिक्कारा है जो लोगों में *'लोकप्रिय'* होते हैं, क्योंकि यह एक झूठा नबी होने का चिन्ह् हो सकता है (लूका 6:26)। इसलिए अगर आप एक बहुत लोकप्रिय प्रचारक हैं, तो आप एक झूठे नबी हो सकते हैं! दूसरी ओर, यीशु ने अपने शिष्यों से कहा कि जब लोग तुम्हारी निन्दा करें तो तुम आनन्दित होना, क्योंकि यह एक *सच्चे* नबी की पहचान है (लूका 6:22, 23)।

जो यीशु ने यहाँ कहा है, क्या आपका इस पर विश्वास है?

याद रखें कि इस्राएल के इतिहास में, और कलीसिया के इतिहास में भी, हरेक सच्चा नबी एक ऐसा *विवादास्पद व्यक्ति* रहा कि उसके समय के धार्मिक अगुवे उसके पीछे लगे रहते थे, उससे घृणा करते थे, और उस पर झूठे आरोप लगाते रहते थे।

इस नियम का एक भी अपवाद नहीं है-चाहे वे पुरानी वाचा के समयकाल के एलिय्याह या यिर्मयाह हों, पहली शताब्दी के यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला या पौलुस हो, या आधुनिक समय के जॉन वैज़्ली या वॉचमैन नी हों।

इसलिए हमें अपने श्रम की अनन्त सफलता को कभी इस बात से नहीं नापना चाहिए कि हम कितने *लोकप्रिय* हैं!

हमें अपने काम की सफलता को आंकड़ों द्वारा भी नहीं नापना चाहिए - जैसे हमारी सभाओं में कितने लोगों ने अपने हाथ ऊँचे किए या हमने कितने लोगों को प्रचार किया आदि।

अगर हम आंकड़ों के अनुसार जाँचते हैं, तो हमें यह कहना पड़ेगा कि यीशु की सेवकाई पूरी तरह से निष्फल रही थी, क्योंकि उसके अंत में अपने पिता के सामने प्रस्तुत करने के लिए उसके पास सिर्फ 11 लोग ही बचे थे (यूहन्ना 17)। लेकिन उसकी सेवकाई इस बात में देखी गई कि वे 11 शिष्य किस तरह के लोग थे! परमेश्वर के लिए वे आज के ऐसे 11 *लाख* गुनगुने, धन-लोलुप, समझौता कर लेने वाले, सांसारिक 'विश्वासियों' से कहीं बढ़ कर थे, और वे परमेश्वर के लिए बहुत कुछ हासिल कर सकते थे।

मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि अगर मैं, अपने पूरी जीवन में, उन प्रेरितों की क्षमता जैसे 11 लोग तैयार कर सकूँ, तो मेरी सेवकाई एक तेजस्वी रूप में सफल हो जाएगी। लेकिन ऐसे *दो-तीन* लोग तैयार करना भी आसान नहीं है। संसार के साथ समझौता किए हुए ऐसे लोगों की बड़ी भीड़ इकट्ठी करनी ज़्यादा आसान है, जो 'यीशु में विश्वास' तो करते हैं लेकिन अपने पूरे हृदयों से उससे प्रेम नहीं करते।

पिछली 20 शताब्दियों में परमेश्वर ने कलीसिया में जितने भी आंदोलन किए, दूसरी पीढ़ी के आते ही उनमें गिरावट होने लगी, और फिर वे वैसे जीवंत और अग्निमय आंदोलन नहीं रहे जैसे वे तब थे जब उनके संस्थापकों ने उन्हें शुरु किया था। क्यों?

इसका एक कारण यह था कि अगली पीढ़ी आंकड़ों में फँसती चली गई। उन्होंने सोचा कि *उनका संख्या में बढ़ना* इस बात का प्रमाण था कि परमेश्वर उन्हें आशिष दे रहा था।

लेकिन हाल के वर्षों में, संसार में सबसे तेज़ी से बढ़ने वाले समूहों में झूठे मसीही धर्म-मत और दूसरे धर्मों के कट्टरपंथी समूह ही हैं। इससे क्या साबित होता है? सिर्फ यही-कि संख्या में होने वाली वृद्धि परमेश्वर की आशिष का प्रमाण नहीं है।

परमेश्वर हमें उस सेवकाई पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए बुलाता है जो उसने हमें मसीह की देह में दी है, और इसके साथ ही, उनके साथ मिलकर काम करने के लिए भी जिनकी दूसरी सेवकाइयाँ हैं। हमारी सेवकाई के परिणामों का मूल्यांकन करना असम्भव है क्योंकि हम एक समूह-*मसीह की* देह का हिस्सा हैं।

इसलिए हमें सिर्फ यह सुनिश्चित करना है कि हम उस काम में *विश्वासयोग्य* रहें जो परमेश्वर ने **हमें** करने के लिए दिया है।

अध्याय 6

अधीनता द्वारा टूटा हुआ

एक आत्मिक मनुष्य टूटा हुआ व्यक्ति होगा।

परमेश्वर, हमारे आरम्भिक वर्षों में, हमें तोड़ने के लिए हमारे ऊपर एक अधिकारी नियुक्त करता है, ऐसा व्यक्ति जिसके हमें अधीन होना पड़ता है। हमें तोड़ने का उसका यह तरीक़ा है। यीशु को भी, परमेश्वर द्वारा सेवकाई दिए जाने से पहले, मरियम और युसुफ के अधिकार की अधीनता में रहना पड़ा था।

अधीनता का नियम मसीह की देह में एक महत्वपूर्ण नियम है। यह उस व्यवस्था के समान ही है जो मानवीय देह में काम करती है।

जैसे, *दाहिना* हाथ *दाहिनी* बाज़ू की 'टीम' का हिस्सा है, और दाहिनी बाज़ू के 'नेतृत्व' के अधिकार को स्वीकार करता है। लेकिन *बायाँ* हाथ इस टीम का हिस्सा नहीं है। मसीह की देह में भी, परमेश्वर कुछ अंगों को (जैसे एक स्थानीय कलीसिया में कुछ लोगों को, या सेवकों के एक समूह को), एक-दूसरे के साथ दूसरों से ज़्यादा जोड़ता है।

परमेश्वर दो तरह से हमारा मार्ग-दर्शन करता है- व्यक्तिगत रूप में, और सामूहिक रूप में।

सिर दाहिने *हाथ* को, बिना दाहिनी *बाँह* हिलाए, काम करने के लिए कह सकता है। यह सिर से मिलने वाला व्यक्तिगत मार्गदर्शन है। हमारे जीवन के ऐसे बहुत से व्यक्तिगत मामले हैं, विवाह, नौकरी, हम कहाँ रहे आदि, जिसमें हमें मसीह हमारे सिर से व्यक्तिगत मार्ग-दर्शन मिलना चाहिए। हमें देह के दूसरे अंगों से सलाह मिल सकती है, लेकिन हमें हमारा मार्ग-दर्शन सीधा प्रभु से ही मिलना चाहिए।

लेकिन जब सिर दाहिनी बाँह से ऊपर उठने के लिए कहता है, *तो सिर से अलग निर्देश मिले बिना ही,* दाहिना हाथ भी उसके साथ ऊपर उठता है।

यह *सामूहिक* मार्गदर्शन है। ऐसे समय में हाथ यह नहीं कह सकता कि वह ऊपर नहीं उठेगा क्योंकि उसे सिर से कोई *व्यक्तिगत* निर्देश नहीं मिला है।

सामूहिक मामलों में एक व्यक्ति को व्यक्तिगत निर्देश की ज़रूरत नहीं होती। अगर आप मसीह की देह के किसी ख़ास भाग से जुड़े हैं, तो परमेश्वर आपके अगुवों को उस मामले में मार्गदर्शन देगा और आपको सिर्फ उनका अनुसरण करना होता है। मैं यह व्यक्तिगत बातों के लिए ***नहीं*** कह रहा हूँ, बल्कि सिर्फ उन सामूहिक मामलों की बात कर रहा हूँ जो उस अंग से सम्बंधित हैं जिससे आप जुड़े हैं। अगर आपको यक़ीन है कि आप एक महत्वपूर्ण अंग से जुड़े हैं, तो उसमें आपको अपने अगुवों के साथ आगे बढ़ते रहना चाहिए।

हम प्रेरितों के काम 16:9 में इसका उदाहरण देखते हैं। जब पौलुस और उसका समूह (जिन्हें परमेश्वर ने जोड़ा था) त्रोआस में थे, तो पौलुस ने दर्शन में एक व्यक्ति को देखा जो उसे मदद करने के लिए मैसीडोनिया में बुला रहा था। पद 10 में, हम यह पढ़ते हैं कि हालांकि पौलुस ने *अकेले* ही दर्शन देखा था, फिर भी उसके सभी साथियों को यक़ीन था कि परमेश्वर ने *उन सबको* मैसीडोनिया में प्रचार करने के लिए बुलाया है। वे इस बात में क्यों आश्वस्त थे जबकि उनमें से किसी ने भी वह दर्शन नहीं देखा था? वे इसलिए आश्वस्त थे क्योंकि उन्हें अपने अगुवे के रूप में पौलुस पर भरोसा था। सामूहिक मामलों में, परमेश्वर को समूह के हरेक सदस्य को व्यक्तिगत मार्गदर्शन नहीं देना होता। वह सिर्फ अगुवे का मार्गदर्शन करता है।

अगर आपको अपने अगुवे में भरोसा नहीं है, तो आपको फौरन ऐसे समूह (या ऐसी मण्डली) को छोड़ देना चाहिए। लेकिन आपको किसी भी मण्डली या मसीही संगठन में रहते हुए वहाँ विद्रोह या फूट का कारण नहीं बनना चाहिए। अगर आप किसी समूह में रह कर उसकी अगुवाई करने वालों से विद्रोह करते हैं- *अगर वह ग़लत है तब भी*, तो परमेश्वर आपको कभी आशिष नहीं देगा। उस समूह को छोड़कर किसी दूसरे के साथ जुड़ जाएं। यही सबसे अच्छा है।

फिर भी, हमें मनुष्यों द्वारा नियुक्त किए गए *कलीसियाई* अधिकारियों और परमेश्वर द्वारा नियुक्त किए गए आत्मिक अधिकारियों के बीच फर्क़ जानना ज़रूरी है। आज बहुत से मसीही अगुवाई के पदों पर हैं, लेकिन उन्हें परमेश्वर ने नियुक्त नहीं किया है, और न ही, प्रेरित पौलुस की तरह, उनसे आत्मिक बच्चे या आत्मिक मण्डलियाँ जन्मी हैं, बल्कि उन्हें मानवीय अधिकारियों ने

चुना और नियुक्त किया है। प्रादेशिक बिशप एक पुरोहित को किसी ख़ास पल्ली (मण्डली) में भेजता है और मुख्य अधीक्षक एक पास्टर को एक ख़ास मण्डली में भेजता है। ये आत्मिक अधिकारी नहीं बल्कि *पुरोहिताई* अधिकारी हैं।

आत्मिक अधिकारी स्वयं परमेश्वर द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। वे स्वयं को, पुरोहिताई अधिकारियों की तरह, *दूसरों पर थोपते नहीं* हैं। वे दूसरों की प्रतीक्षा करते हैं कि वे उनके अधिकार को स्वेच्छा से स्वीकार करें। विश्वासी ऐसे अधिकारियों के अधीन इसलिए होते हैं क्योंकि वे जान लेते हैं कि उन पर परमेश्वर का अभिषेक है। एक आत्मिक अगुवा वह है जिसने *दूसरों का भरोसा* जीता है।

एक ईश्वरीय व्यक्ति के अधीन होने से हम न सिर्फ बहुत से मूर्खतापूर्ण काम करने से बचे रहते हैं, बल्कि वह हमें इस योग्य भी बनाता है कि हम उससे बहुत सी बुद्धि की बातें भी सीखें। वह हमें उन ख़तरों के बारे में बता सकता है जिनसे हम तो अनजान होते हैं लेकिन जिनका सामना उसने किया है।

इसलिए हमारे लिए आत्मिक अधिकार के अधीन होना ऐसा ही सुरक्षित है जैसे बच्चे माता-पिता की अधीनता में सुरक्षित होते हैं।

1 पतरस 5:5 में, हम यह पढ़ते हैं कि युवाओं को अपने वृद्धों की अधीनता में रहना चाहिए क्योंकि परमेश्वर घमण्डी का तो विरोध करता है लेकिन नम्र व दीनों पर दया करता है। यहाँ हमें परमेश्वर से आत्मिक अधिकार पाने के बड़े भेद का पता चलता है। मैं ऐसे बहुत से बड़े योग्य भाइयों को जानता हूँ जिन्हें परमेश्वर से सिर्फ इस एक वजह से कभी आत्मिक अधिकार नहीं दिया: उन्होंने अपने जीवन भर कभी किसी के अधीन होना नहीं सीखा था। इसलिए उनकी इच्छा की मज़बूत शक्ति कभी नहीं टूटी थी।

एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में अधिकार एक ख़तरनाक वस्तु होती है जो कभी *टूटा नहीं* है। अगर आप पहले टूटे नहीं हैं, और आप जाकर दूसरे लोगों को अपने अधिकार में करने की कोशिश करते हैं, तो आप उनका नाश कर देंगे और इस प्रक्रिया में आप स्वयं अपना भी नाश करेंगे। इससे पहले कि परमेश्वर हममें से किसी को भी आत्मिक अधिकार दे, उसे पहले हमारे गर्व की ताक़त को तोड़ना पड़ता है।

एक घर के अन्दर पति या पिता के रूप में भी, एक ईश्वरीय तरीक़े से अधिकार का इस्तेमाल करने के लिए एक व्यक्ति का *टूटा हुआ होना* ज़रूरी होता है। अगर आप चाहते हैं कि आपकी पत्नी या आपके बच्चे आपके अधीन

रहें, तो पहले आपको आत्मिक अधिकारियों की अधीनता में रहना सीखना होगा। सिर्फ तभी अपने घर में आप जो करेंगे, उसमें परमेश्वर आपको ऊँचा उठाएगा।

मैं संक्षिप्त में आपको अपने अनुभव के बारे में बताता हूँ। मेरे जीवन में 20 व 30 साल की उम्र के दौरान, परमेश्वर ने ऐसा होने दिया कि एक से ज़्यादा मण्डलियों में, ऐसे प्राचीनों द्वारा मुझे दबाया व अपमानित किया जाए जो मेरी सेवकाई से ईर्ष्या करते थे। उन सभी मौक़ों पर परमेश्वर ने मुझसे यही कहा कि मैं अपना मुँह बंद रखूँ और बिना कोई सवाल कि उन प्राचीनों के अधीन रहूँ। और मैंने ऐसा ही किया। जब तक मैं उनकी मण्डलियों में रहा, *और उन मण्डलियों को छोड़ने के बाद भी,* मैंने उनसे अपने सम्बंध अच्छे बनाए रखे।

उन वर्षों में मैं यह नहीं जानता था कि परमेश्वर ने भविष्य में मेरे लिए कौन सी सेवकाई रखी हुई थी। लेकिन अनेक वर्षों तक मुझे तोड़ने के द्वारा परमेश्वर मुझे आत्मिक अधिकार का उपयोग करने के लिए तैयार कर रहा था। उसने मुझे बार-बार तोड़ा और उन वर्षों में उसने मुझे सिखाया कि जो कुछ दूसरे मेरे साथ कर रहे थे, वह सब कुछ पूरी तरह उसके वश में था। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्षों बाद जब परमेश्वर ने मुझे लोगों के ऊपर आत्मिक अधिकार दिया, तो मैं उसका इस्तेमाल कभी एक तानाशाह की तरह नहीं कर सका बल्कि मैंने हमेशा उसे संवेदना के साथ ही इस्तेमाल किया।

परमेश्वर का मुझे तोड़ने का काम अभी पूरा नहीं हुआ है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान, परमेश्वर मुझे ऐसी नई और अनोखी परीक्षाओं में से लेकर चला है जिनका मुझे पहले कोई अनुभव नहीं था। लेकिन मेरे जीवन में उसका उद्देश्य वही है - *कि वह मुझे और तोड़े, कि फिर वह मुझे अपना ज़्यादा जीवन और ज़्यादा अधिकार सौंप सके*।

एक अन्य उपाय जिससे परमेश्वर हमारे बल और गर्व का तोड़ता है, वह है हमारे अगुवों द्वारा ताड़ना। लगभग सभी विश्वासियों के लिए ताड़ना ग्रहण करना बहुत मुश्किल होता है। एक दो साल के बच्चे के लिए भी ताड़ना को सहना आसान नहीं होता-ख़ास तौर पर तब जब वह *सार्वजनिक रूप में* दी जाए।

अंतिम बार ऐसा कब हुआ था जब आपने सार्वजनिक ताड़ना को आनन्दपूर्वक स्वीकार किया था? क्या आपने अपने जीवन में उसे एक बार भी स्वीकार किया है? अगर नहीं, तो इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि आपके अन्दर आत्मिक अधिकार की कमी है।

जब एक व्यक्ति, जो प्रभु में आपके ऊपर है, आपकी ताड़ना करता है, तो इससे कोई फर्क़ नहीं पड़ता कि उसने वह एक कठोर तरीक़े से किया है। आपको फिर भी परमेश्वर के हाथ के नीचे अपने आपको दीन करना चाहिए, जिसने आपके अगुवे को आपकी ताड़ना की अनुमति दी–फिर चाहे आपने उस ताड़ना के लायक़ कोई काम भी नहीं किया था और उसमें आपकी कोई ग़लती भी नहीं थी।

यीशु को उसके शत्रुओं ने सार्वजनिक तौर पर अपमानित किया था और उस पर बहुत से झूठे आरोप लगाए थे। लेकिन उसने कोई शिकायत नहीं की थी। और इस तरह, अनुसरण करने के लिए उसने हमारे सामने एक आदर्श उदाहरण रख दिया है।

अगर परमेश्वर आपके किसी *शत्रु* को आपकी आलोचना करने की अनुमति भी दे देता है, तो इसमें आपको अपने आपसे सिर्फ इतना पूछना है कि क्या उसकी आलोचना में कुछ सत्य है। बस यही एक निर्णायक बात है। असल में वह आपको एक मुफ्त जाँच–रिपोर्ट दे रहा है! इस बात की परवाह न करें कि उसने वह 'स्कैन' *कैसे* किया या उस 'स्कैनिंग' के पीछे उसका *उद्देश्य* क्या था। यह ज़रूरी नहीं है। आपको अपने आपसे सिर्फ यह पूछना है कि क्या उस *'स्कैन'* ने आपके जीवन में से ऐसा कुछ प्रकट किया है जो मसीह–समान नहीं है।

मेरी सेवकाई में बहुत लोग मेरी आलोचना करते हैं। मैं जानता हूँ कि प्रभु के सच्चे सेवकों की हमेशा आलोचना हुई है और उन पर झूठे आरोप लगाए गए हैं। इसलिए आलोचना से मैं विचलित नहीं होता। मैं प्रभु से सिर्फ इतना कहता हूँ कि अगर उन बातों में कुछ सच है, तो मुझे दिखाए।

हमारे शत्रु अकसर हमारे मित्रों से ज़्यादा हमारे विषय का सत्य हमें बताते हैं। हमें सारी आलोचना को झूठा मानकर फेंक नहीं देना चाहिए।

अगर मेरे चेहरे पर एक काला दाग़ है, और मेरा शत्रु मुझे वह दिखाता है, तो मुझे उसका आभारी होना चाहिए क्योंकि उसने मुझे वह दिखाया है जो मैं खुद नहीं देख सकता था। मैं जाकर फिर उस दाग़ को साफ कर सकता हूँ! इससे कोई फर्क़ नहीं पड़ता कि वह उसने एक बुरे उद्देश्य से कहा था या मेरा अपमान करने के लिए कहा था। उसने फिर भी मेरी मदद की कि मैं स्वयं को साफ कर सकूँ!

यहूदा इस्करियोती और पतरस में यह एक बड़ा फर्क़ था। जब पतरस ने मूर्खता–पूर्वक प्रभु को सूली पर चढ़ने से बचने के लिए कहा, तो प्रभु ने उसे

कठोरता से डाँटते हुए कहा था, *'दूर हट, शैतान।'* यीशु द्वारा किसी भी मनुष्य को दी गई यह सबसे कठोर ताड़ना थी। उसने फरीसियों को भी सिर्फ 'करैत' ही कहा था। लेकिन पतरस को 'शैतान' कहा गया था। यीशु की सबसे कठोर ताड़ना उसके सबसे नज़दीकी लोगों के लिए थी। वह उन्हें *सबसे ज़्यादा* डाँटता है जिनसे वह *सबसे ज़्यादा* प्यार करता है (प्रका. 3:19)।

इसके कुछ ही समय बाद, जब बहुत से विश्वासी प्रभु की शिक्षा से ठोकर खा रहे थे और उसे छोड़ कर जा रहे थे, तब प्रभु ने अपने शिष्यों से पूछा था कि क्या वे भी उसे छोड़ कर जाना चाहते हैं। तब वह पतरस था जिसने यह जवाब दिया था, *'प्रभु, हम तुझे छोड़ कर कहाँ जाएं, अनन्त जीवन की बातें तो तेरे ही पास हैं (यूहन्ना 6:60, 66-68)*। पतरस द्वारा सुने गए अनन्त जीवन के वे शब्द कौन से थे? *'दूर हट शैतान!'*

क्या हम ताड़ना के शब्दों को ऐसे शब्दों के रूप में देखते हैं जो हमें *अनन्त जीवन* तक पहुँचाते हैं?

पतरस ने ताड़ना को इस तरह देखा था, और इस बात ने उसे वह बनाया जो वह अंततः बना था।

एक और मौके पर पतरस ने प्रभु की ताड़ना को स्वीकार किया था। पतरस ने प्रभु से कहा था कि सारे शिष्य भी अगर उसका इनकार कर देंगे तब भी वह ऐसा नहीं करेगा। प्रभु ने फौरन ही उसे यह बता दिया था कि बारह घण्टों के अन्दर ही वह तीन बार उसका इनकार कर देगा। लेकिन पतरस ने उस जवाब से स्वयं को अपमानित महसूस नहीं किया था। प्रभु ने फिर ऐसे ही मनुष्य को लेकर पैंतेकुस्त के दिन अपना मुख्य प्रवक्ता बनाया था।

पतरस ने क्योंकि ताड़ना मिलने पर स्वयं को नम्र व दीन किया, इसलिए परमेश्वर ने उसे ऊँचा उठाया। अपने स्वयं के अनुभव से सीखने के बाद पतरस 1 पतरस 5:5-6 में अब हमें उत्साहित करता है कि हमें स्वयं को हमेशा दीन करते रहना है। अपने आपको नम्र व दीन करने से हमारा कोई नुक़सान नहीं हो सकता। एक दिन परमेश्वर हमें ऊँचा उठाएगा।

ताड़ना के समय जो मनोभाव पतरस ने दर्शाया, आइए उसकी तुलना में हम यहूदा इस्करियोती की ताड़ना और उसके मनोभाव से करते हैं। जब एक स्त्री ने यीशु पर बहुमूल्य इत्र उण्डेल दिया, तो यहूदा ने कहा कि वह एक ऐसा काम था जिसमें धन की बर्बादी हुई थी क्योंकि वही धन ग़रीबों को दिया जा सकता था (यूहन्ना 12:5; मत्ती 26:10-13)। यीशु ने यहूदा को बड़ी नरमी से

झिड़कते हुए कहा था कि वह उस स्त्री से कुछ न कहे क्योंकि उसने एक अच्छा काम किया था। लेकिन यहूदा यह सुन कर क्रोधित हो गया था।

अगले ही पद में (मत्ती 26:14) हम पढ़ते हैं कि यहूदा *फौरन ही* मुख्य याजकों के पास गया और यीशु को पकड़वाने के लिए तैयार हो गया। इस घटना में समय का बहुत महत्व है। यहूदा को इसलिए आघात लगा था क्योंकि यीशु ने उसे *सार्वजनिक* रूप में ताड़ना दी थी।

यीशु ने उससे सिर्फ इतना ही कहा था कि उसने उस स्त्री के बारे में जो मत बनाया था, वह सही नहीं था। लेकिन उसे विचलित करने के लिए यही काफी था। जब आप टूटे हुए नहीं होते तो एक मामूली बात भी आपके लिए ठोकर का कारण बन जाएगी।

लेकिन यहूदा के काम के अनन्त परिणाम देखें। और पतरस के काम के अनन्त परिणाम देखें। दोनों को ताड़ना द्वारा परखा गया था–एक *निष्फल* हुआ, एक *सफल* हुआ।

आज हम भी इसी तरह परखे जा रहे हैं।

अगर सार्वजनिक ताड़ना से हम अपमानित होते हैं, तो इससे यही साबित होता है कि हम मनुष्यों की प्रशंसा चाहते हैं। अगर ऐसा है, तो इसके बारे में अभी जान लेना अच्छा है, कि हम ऐसी प्रशंसा पाने की लालसा से अपने आपको शुद्ध कर सकें। यह हो सकता है कि परमेश्वर ने यह परिस्थिति इसलिए बनने दी कि वह हमें दिखा सके कि हम मनुष्यों के मतों के कितने गुलाम हैं। अब हम अपने आपको धोकर साफ कर सकते हैं।

ऐसा हो कि हममें ताड़ना के बारे में हमेशा पतरस का मनोभाव हो– चाहे प्रभु हमें अपने आत्मा द्वारा प्रत्यक्ष ताड़ना दे रहा हो या यह किसी अन्य द्वारा हो रहा हो। यह हम सब के लिए अनन्त जीवन का रास्ता है। अगर हम स्वयं को नम्र व दीन करेंगे, तो हम परमेश्वर से कृपा पाएंगे और वह हमें उचित समय पर ऊँचा उठाएगा।

जो लोग टूटे नहीं होते वे एकाकी होते हैं–एकाकी अगुवे और एकाकी विश्वासी। वे कभी किसी के अधीन नहीं होते। वे वहीं जाते हैं जहाँ *वे* जाना चाहते हैं, और वही करते हैं जो *वे* करना चाहते हैं। ऐसे अटूटे विश्वासी सिर्फ उनके साथ ही काम कर सकते हैं जो उनकी आज्ञापालन करते हैं और उसे स्वीकार करते हैं जो वे कहते हैं। ऐसे बहुत से विश्वासी हैं, जो एक कलीसिया से दूसरी कलीसिया, और एक संस्था से दूसरी संस्था में मण्डराते रहते हैं, ऐसी

तितलियों की तरह जो एक फूल से दूसरे फूल पर मण्डराती रहती है। वे बिना कुछ हासिल किए अपना जीवन बर्बाद कर देते हैं। वे कैन की तरह भटकने वाले बन जाते हैं, क्योंकि कैन की ही तरह, वे प्रभु की ताड़ना को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते (उत्पत्ति 4:12)।

परमेश्वर ऐसे 'एकाकी' लोगों को आत्मिक अधिकार नहीं दे सकता क्योंकि वह एक देह तैयार कर रहा है, व्यक्तिवादी विश्वासी नहीं!

अध्याय 7

दूसरों की ज़िम्मेदारी उठाने वाला

एक आत्मिक अगुवा अपने झुण्ड में जीवों की रखवाली करेगा, क्योंकि उसे एक दिन परमेश्वर को उनमें से एक-एक का लेखा देना है (इब्रा. 13:17)।

मैंने हमारी कलीसिया में अपने सह-सेवकों से कहा है कि मैं उनके जीवों के प्रति ज़िम्मेदार रहूँगा क्योंकि उन्होंने मुझे अपना बड़ा भाई माना है। इसलिए मैंने उन्हें वही बताया है जो उनके लिए अच्छा है, फिर चाहे उन्हें उससे तकलीफ़ भी क्यों न हुई हो - बिलकुल उसी तरह, जैसे मैं अपने घर में अपने बच्चों के साथ करता हूँ। हरेक पास्टर और प्राचीन उसके अधीन लोगों के लिए परमेश्वर के सामने जवाबदार है।

परमेश्वर अपने बच्चों को इसी तरह आत्मिक अगुवे देता है जैसे वह एक घर में बच्चों को पार्थिव पिता देता है। मैं चार लड़कों का पिता हूँ। मेरे लड़के जिस समय घर में थे, तब मैं उनका मार्गदर्शन करता था और बहुत से मामलों में उन्हें सलाह देता था। वे मेरे अधीन रहते थे और मेरी आज्ञा का पालन करते थे। इससे वे बहुत से ख़तरों से बचे रहते थे। मैं अब भी, जबकि वे बड़े हो गए हैं, कभी-कभी उन्हें सलाह देता हूँ क्योंकि मैं उनका पिता हूँ। इसी तरह, जिनके बोझ परमेश्वर हमारे हृदयों पर डालता है, हमें उनका भी आत्मिक पिता होना है।

परमेश्वर आपके झुण्ड के लिए आपको नबूवत का एक शब्द तभी देगा जब आप उनके पिता समान होने के लिए तैयार होंगे। इससे पहले कि परमेश्वर आपके झुण्ड के लिए आपको कोई उपयुक्त शब्द दे सके, आपको अपने हृदय में उनका बोझ लेकर परमेश्वर के सामने जाना होगा। पौलुस के पास हरेक

कलीसिया को लिखने के लिए एक शब्द था क्योंकि वह उन्हें अपने हृदय में लिए फिरता था (जैसा कि वह फिलिप्पियों 1:7 में लिखता है) और उनके लिए नियमित प्रार्थना करता था। अगर आपके अन्दर अपने झुण्ड की इस तरह देखभाल करने का बोझ नहीं है, तो आप सिर्फ एक ऐसे व्यावसायिक पास्टर होंगे जो वेतन के लिए काम कर रहे हैं।

लोगों के जीव का 'लेखा देने वाला' होने का क्या अर्थ है? लेखा देना एक आर्थिक शब्द है। अगर आप एक हिसाब लगा रहे हैं, और आपके बाएं हाथ पर लिखी आय का कुल योग 5000 रुपए है और दाएं हाथ पर लिखे ख़र्च का कुल योग 4999 है, तो कहीं कुछ गड़बड़ है। वह फर्क़ एक रुपए का है, लेकिन फिर भी वह एक ग़लत लेखा है। आपको उस एक रुपए का लेखा देना होगा क्योंकि लेखा-जोखा एक बिलकुल निश्चित विज्ञान है। परमेश्वर को लेखा देने का अर्थ यही है कि आपको निश्चित तौर पर यह मालूम होना चाहिए कि आपके झुण्ड के साथ आत्मिक तौर पर क्या चल रहा है। इस मामले को आपको बहुत गंभीरता से लेना होगा, क्योंकि आत्मिक अगुवाई अस्पताल में होने वाली एक पेचीदा सर्जरी से भी ज़्यादा गंभीर काम है। जीवन दाँव पर लगे हैं- अनन्त के लिए।

अपनी मण्डली में आप विश्वासियों के लिए ज़िम्मेदार हैं। आप उन्हें आत्मिक नहीं बना सकते। लेकिन उन्हें प्रभु के साथ एक जीवित सम्बंध में ले आने के लिए आपको सब कुछ करना होगा। आपका लक्ष्य यह हो कि आप '*प्रत्येक व्यक्ति को मसीह में सिद्ध करके उपस्थित कर सकें*' (कुल. 1:28)। आप पीछे लौट जाने से उन्हें रोक नहीं सकते, लेकिन यह ज़रूरी है कि उनके ऐसा करने से पहले आपने उन्हें *चेतावनी* दे दी हो।

एक बार जब हमारी मण्डली में एक भाई पीछे लौट गया तो मैं बहुत दु:खी हो गया। मैंने प्रभु से पूछा कि ऐसा क्यों हुआ और क्या मैं किसी बात में निष्फल रहा था-शायद उसके जीवन में होने वाली किसी बात के प्रति मुझमें संवेदना की कमी रह गई हो। क्या मैं उसे कोई चेतावनी या उत्साहवर्धन का शब्द देने से चूक गया था? मैंने अपने आपको जाँच कर अपना न्याय किया क्योंकि उस युवा जीवन के लिए मैं परमेश्वर के सामने जवाबदार था।

हर बार जब भी हमारी देखभाल में दिया गया कोई व्यक्ति पीछे लौटता है तो हमें उसमें स्वयं को *दोषी* महसूस करने की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन हमें प्रभु से यह पूछना चाहिए कि वह उसमें से हमें क्या कहना चाहता है। हमें

शैतान को यह अनुमति नहीं देनी है कि वह हमें *'दोष की भावना'* में फँसा ले; हमारी ग़लतियों से हमें भविष्य के लिए पाठ सीखने चाहिए।

परमेश्वर हमें वह बातें दिखा सकता है जो मानवीय तर्क कभी नहीं दिखा सकता। अगर हम परमेश्वर की आवाज़ सुनने के प्रति संवेदनशील हैं, तो वह पहले ही हमें उन लोगों की मदद करने के लिए कह देगा जो फिसल रहे हैं। एक दिन, अकारण ही, वह हमें किसी से भेंट करने के लिए कहेगा। मुझे ऐसे कुछ अनुभव हुए हैं। अकसर मुझे यह पता नहीं होता कि परमेश्वर क्यों मुझे किसी से मिलने के लिए भेज रहा है, क्योंकि वह एक व्यक्ति के सारे पाप और समस्याएं मुझ पर प्रकट नहीं करता। (इसके लिए मैं परमेश्वर का आभारी हूँ क्योंकि दूसरे लोगों के पापों की जानकारी से मैं अपना मन दूषित नहीं करना चाहता)। तब प्रभु उस भाई के साथ कुछ बाँटने के लिए मुझसे कहता है। उसकी समस्या को जाने बिना ही, मेरे द्वारा कहे गए किसी शब्द से उसे मदद मिलेगी। और अकसर मुझे यह मालूम भी न होगा कि मैंने उसकी मदद की है।

अगर हममें परमेश्वर की बात सुनने की आदत होगी, तो वह हमारे हालातों को इस तरह तैयार करेगा कि फिर हम ऐसे लोगों के संपर्क में आएंगे जो ज़रूरतमंद हैं, और जिनके साथ हम वह शब्द बाँट सकते हैं जो उसकी उस ज़रूरत को पूरा करेगा।

यीशु ने अपना जीवन इसी तरह बिताया (जैसा हम यशायाह 50:4 में पढ़ते हैं)। पिता उससे प्रतिदिन बात करता था और थके हुओं से बोलने के लिए उसे शब्द देता था। हम सभी को इसी तरह का अगुवा बनना चाहिए। जब मैं नौ-सेना में था, तो जहाज़ों की पाली-प्रणाली को 'निगरानी' कहा जाता था। चार-चार घण्टों की पालियाँ होती थीं जिसमें एक अधिकारी को 'निगरानी' रखनी होती थी, और उस समय वह जहाज़ पर होने वाली हरेक बात के लिए ज़िम्मेदार होता था। अगर मैं खुले समुद्र में मध्य-रात्रि से सुबह चार बजे तक 'निगरानी' पर होता था, तो मुझे जहाज़ के 'ब्रिज' (जहाज़ के सबसे ऊँचा स्थान) पर दो नाविकों के साथ खड़ा रहना होता था। जहाज़ पर बाक़ी सभी लोग सो रहे होते थे। मुझे हमारे मार्ग में से आने-जाने वाले दूसरों जहाज़ों की निगरानी करते हुए यह सुनिश्चित करना होता था कि हमारा जहाज़ सही दिशा में जा रहा है। हवा और लहरों की वजह से जहाज़ के दिशा से हट जाने को मुझे सही करना होता था। जहाज़ की सुरक्षा और दिशा दोनों ही उन चार घण्टों के लिए मेरी ज़िम्मेदारी होती थी। मेरी 'निगरानी' के समय में मैं एक मिनट के लिए भी सो नहीं सकता था।

बाइबल इसी तरह हमें दूसरों की 'निगरानी' करने के लिए कहती है; यह एक बहुत गंभीर मामला है। दूसरे लोगों के जीवनों पर निगरानी रखने के लिए एक आत्मिक अगुवे को *सचेत* रहना पड़ता है जिससे कि वह यह सुनिश्चित कर सके कि वे भटक तो नहीं रहे हैं, खिसक तो नहीं रहे हैं, या खो तो नहीं रहे हैं।

हरेक अच्छे अस्पताल में 'रोज़ का दौरा' करते हैं जिसमें डॉक्टर दौरा करते और मरीज़ों की हालत को देखते हैं। डॉक्टर सभी विभागों में एक सामान्य रूप में यह नहीं देखते कि सभी ठीक नज़र आ रहे हैं या नहीं। वे ऐसा नहीं करते। वे हरेक मरीज़ को व्यक्तिगत रूप में जाँचते हैं।

लेकिन ज़्यादातर पास्टर क्या करते हैं? वे रविवार की सुबह कलीसिया के हरेक सदस्य पर नज़र डाल कर देखते हैं और यह मान लेते हैं कि सभी आत्मिक रूप में ठीक ही नज़र आ रहे हैं।

लेकिन ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो बाहर से तो बहुत स्वस्थ नज़र आते हैं, लेकिन भीतर से बहुत बीमार होते हैं-अस्पतालों में भी, कलीसियाओं में भी! कुछ जो बहुत स्वस्थ लग रहे होंगे, उनके अन्दर का *'कैंसर'* उन्हें खा रहा होगा। यह हो सकता है कि आपकी मण्डली में प्रसन्न नज़र आ रहे और ताली बजा कर ज़ोर से 'हाल्लेलुय्याह' चिल्लाने वालों के पारिवारिक जीवनों में गंभीर समस्याएं हों।

जैसे एक डॉक्टर हरेक रोगी को व्यक्तिगत रूप से जाँचता है, वैसे ही एक आत्मिक अगुवे को भी हरेक व्यक्ति के जीव को 'जाँचते' रहना है (उसकी 'निगरानी' करनी है)।

बाइबल सभी चरवाहों को इस बात के लिए उत्साहित करती है कि वह अपनी *भेड़-बकरियों की दशा भली-भांति'* जानें (नीति. 27:23)।

जब एक मण्डली में संख्या बढ़ने लगती है, तो एक अगुवे के लिए उसकी देखभाल में दिए गए जीवों की 'निगरानी' करने का एक ही तरीक़ा होता है - कि वह इस ज़िम्मेदारी को ऐसे दूसरे लोगों को सौंप दे जिन्हें वही काम करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है।

एक व्यक्ति के लिए यह असम्भव है कि वह एक निश्चित संख्या के बाद व्यक्तिगत रूप से लोगों की देखभाल कर सकेगा। व्यक्तिगत रूप से मैं सोचता हूँ कि वह संख्या बारह है, क्योंकि यीशु ने इतने ही लोगों को शिष्य बना कर सिखाया था। कोई भी डॉक्टर अस्पताल के बहुत से विभागों को नहीं संभाल सकता, चाहे वह कितना भी अच्छा डॉक्टर क्यों न हो। हम सब की शारीरिक सीमाएं हैं।

जिनकी *प्रेरिताई* की सेवकाई है, और जिन पर बहुत सी मण्डलियों की देखभाल की ज़िम्मेदारी है, उन्हें अपनी कलीसिया में सभी मण्डलियों के प्राचीनों की दशा मालूम होनी चाहिए। अगर प्राचीन आत्मिक होंगे, तभी मण्डली भी आत्मिक होगी।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बहुत से पास्टर व प्राचीन ऐसे डॉक्टरों की तरह हैं जो अपने मरीज़ों का इलाज एक *'बाहरी दवाखाने'* में करते हैं, जो अपने मरीज़ों को दवा के नुस्ख़े लिख कर भेज देते हैं और उन्हें यह कभी पता नहीं चल पाता (और न ही उन्हें इसकी परवाह होती है) कि उनका मरीज़ ज़िन्दा बचा या मर गया!

लेकिन एक आत्मिक अगुवा अपनी देखभाल में दिए गए जीवों को *बहुत गंभीर मामले* मानता है।

अध्याय 8

जीवन में से सेवकाई करने वाला

एक आत्मिक अगुवा दूसरों की सेवा अपनी समझदारी से नहीं अपने जीवन से करता है।

पुरानी वाचा में परमेश्वर ने ऐसे लोगों को भी इस्तेमाल किया जिनके जीवन अनैतिक थे। शिमशौन पाप में रहते हुए भी इस्राएल का छुटकारा करा सका। उसके व्यभिचार करने पर भी परमेश्वर के आत्मा ने उसे नहीं त्यागा था। परमेश्वर का अभिषेक उस पर से तभी हटा जब उसने अपने बाल कटाए और परमेश्वर के साथ अपनी वाचा तोड़ी। दाऊद की अनेक पत्नियाँ थीं। फिर भी उस पर परमेश्वर का अभिषेक बना रहा और उसने पवित्र-शास्त्र भी लिखा।

लेकिन नई वाचा की सेवकाई पूरी तरह से भिन्न् है। दूसरा कुरिन्थियों का अध्याय तीन पुरानी वाचा की सेवकाई की तुलना नई वाचा की सेवकाई से करता है। इनमें बुनियादी फर्क़ यह है: पुरानी वाचा में याजक व्यवस्था का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद लोगों को वह सिखाते थे जो परमेश्वर ने उसके वचन में कहा था। लेकिन नई वाचा में हम *यीशु के पीछे चलते हैं* जिसने परमेश्वर के वचन को *अपने भीतरी जीवन में से* पिता के *साथ-साथ चलते* हुए बोला। हमारे *जीवन* में से प्रचार करने और हमारे *ज्ञान* में से प्रचार करने में बहुत फर्क़ है।

अगर आज भारत में ज़्यादातर विश्वासियों के जीवनों में एक उथलापन है, तो उसकी वजह यह है कि उनके *अगुवों* के जीवन खोखले हैं। लोगों के जीवन इसलिए शारीरिक हैं क्योंकि *अगुवे* का जीवन - उसका वैचारिक-जीवन, उसकी पत्नी, बच्चों व उसके साथी सेवकों के साथ उसका जीवन शारीरिक है। ऐसे अगुवों की सेवकाई सिर्फ *सूचना व जानकारी* में *जोड़-तोड़* करना है। यह *पुरानी वाचा की सेवकाई* है। हरेक प्रचारक जो सिर्फ जानकारी ही देता

पुरानी वाचा का *प्रचारक* है। वह जो भी जानकारी देता है, वह सही हो सकती है। लेकिन अगर वह *जीवन* नहीं दे रहा है, तो वह नई वाचा का सेवक *नहीं* है। पुरानी वाचा *अक्षर* की वाचा है, जबकि नई वाचा *जीवन* की वाचा है। *अक्षर मारता है लेकिन आत्मा जिलाता है*।

पुरानी वाचा में परमेश्वर ने इस्राएल को नियम दिए जिनका उन्हें पालन करना था। लेकिन नई वाचा में, परमेश्वर ने यीशु के व्यक्तिपन में हमें एक उदाहरण दिया है। उसका ***जीवन*** मनुष्यों की ज्योति है। आज यह ज्योति कोई धर्म-सिद्धान्त या शिक्षा नहीं है, बल्कि वह यीशु का अपना जीवन है जो हममें से प्रकट होता है। इसके अलावा जो कुछ भी है, वह अंधकार है - *फिर चाहे वह सुसमाचार-प्रचार का कोई धर्म-सिद्धान्त ही क्यों न हो*।

पुरानी वाचा में परमेश्वर की लिखित व्यवस्था ज्योति थी, जैसा हम भजन 119:105 में पाते हैं। लेकिन फिर वचन देहधारी हुआ और यीशु स्वयं जगत की ज्योति बन गया (यूहन्ना 8:12)। उसका जीवन मनुष्यों की ज्योति था (यूहन्ना 1:4)। लेकिन उसने अपने शिष्यों से कहा कि वह सिर्फ तब तक जगत की ज्योति हो सकता है जब तक वह पृथ्वी पर है (यूहन्ना 9:5)। अब जबकि वह स्वर्ग चला गया है, वह हमें जगत की ज्योति होने के लिए छोड़ गया है (मत्ती 5:14)। इसलिए उस ज्योति को प्रकट करने की हमारी बड़ी ज़िम्मेदारी है - हमारे *जीवनों* के द्वारा।

एक कलीसिया अपने अगुवे जैसी ही बन जाती है। प्रकाशितवाक्य अध्याय 2 व 3 में, हम देखते हैं कि सातों कलीसियाओं में हर बार प्रभु ने जो संदेश उसके संदेशवाहक को दिया वही उसकी कलीसिया को दिया। हरेक संदेश इसी कथन के साथ समाप्त हुआ कि आत्मा कलीसिया से वही बात कह रहा था। जहाँ पाँच संदेशवाहक (प्राचीन) शारीरिक थे, वहाँ कलीसियाएं भी शारीरिक थीं। जहाँ दो संदेशवाहक आत्मिक थे, वहाँ उनकी कलीसियाएं भी आत्मिक थीं। लौदीकिया की कलीसिया का संदेशवाहक *गुनगुना* था, इसलिए कलीसिया भी *गुनगुनी* थी। फिलादेलफिया की कलीसिया का संदेशवाहक *विश्वासयोग्य* था, इसलिए उसकी कलीसिया भी *विश्वासयोग्य* थी।

उत्पत्ति अध्याय 1 में, एक वाक्यांश जो बार-बार आता है वह है *'उनकी अपनी जाति के अनुसार।'* हम पेड़ों के फलों के बारे में पढ़ते हैं जो *उनकी अपनी जाति के अनुसार* फल थे, पौधे जिनमें *उनकी अपनी जाति के अनुसार* बीज थे, मछलियाँ और पक्षी जो *उनकी अपनी जाति के अनुसार* थे, और वन्य-पशु, रेंगने वाले जन्तु, और घरेलू पशु जो *अपनी-अपनी जाति के अनुसार* थे (पद 11. 12, 21, 25)। सृष्टि में सब कुछ अपनी-अपनी जाति के अनुसार ही उत्पन्न करता है।

परमेश्वर ने आदम को *'अपने स्वरूप व समानता'* में बनाया था (उत्पत्ति 5:1)। लेकिन आदम से जो पुत्र पैदा हुआ वह आदम के *'स्वरूप और समानता'* में था (पद 3)। वह परमेश्वर के स्वरूप व समानता में एक पुत्र उत्पन्न *नहीं* कर सका था।

आत्मिक तौर पर भी हम *अपने ही स्वरूप और समानता में अपनी ही तरह के बच्चे पैदा करते* हैं। अगर हम बौद्धिक प्रकार के व्यक्ति हैं तो हम अपनी सेवकाई में बौद्धिक प्रकार के लोग ही पैदा करेंगे। अगर हम कंजूस हैं तो हम कंजूस ही पैदा करेंगे, अगर हम अहंकारी और गर्व से भरे हैं, तो हमारी सेवकाई द्वारा हम अहंकारी और गर्व से भरे लोग ही पैदा करेंगे। दूसरी तरफ, अगर हममें एक सेवक की आत्मा है, तो हमारे आत्मिक बच्चों की भी सेवकीय-आत्मा होगी।

लेकिन यह सम्भव है कि कोई ऐसा दुर्लभ भाई हो जो अपने अगुवे के ढाँचे में न ढलते हुए, उसकी तरह शारीरिक न होकर परमेश्वर का खोजी हो जाए और आत्मिक बन जाए। लेकिन ऐसा किसी *दुर्लभ* मामले में ही होता है। सामान्य तौर पर कहें, तो ज़्यादातर विश्वासी अंधों की तरह अपने अगुवों का अनुसरण करते हैं। जैसा प्रचारक वैसे उसके लोग! और जहाँ अगुवे और लोग दोनों ही अंधे होते हैं, वे सभी फिर गड्ढे में गिरते हैं।

यह याद रखें कि आपकी मण्डली के विश्वासी बाहर जाकर अपनी ही तरह के लोग पैदा करेंगे। और फिर आपकी अपनी जाति के अनुसार आपके पोते-पोतियाँ होंगे! इसलिए आप अभी से सचेत हो जाएं कि आप कैसे बच्चे पैदा करने वाले हैं- क्योंकि यीशु के आने तक यह प्रक्रिया चलती रहने वाली है।

इसलिए शुरू से ही यह बहुत ज़रूरी है कि आप अपनी कलीसिया में किसी धर्म-सिद्धान्त की तरफ मन-फिराए लोग नहीं बल्कि शिष्य तैयार करें। ऐसा करने के लिए पहले आपको स्वयं शिष्य होना पड़ेगा। आपके पास ऐसा जीवन होना चाहिए जिसे आप दूसरों को हस्तांतरित कर सकें।

धर्म-सिद्धान्त की तरफ मन-फिराए लोग यही करेंगे कि वे जाकर दूसरों के मनों को धर्म-सिद्धान्तों की तरफ फिराएंगे। ऐसे लोग उद्धार के संदेश को तो समझ लेंगे, लेकिन वे प्रभु के पीछे चलने वाले न होंगे। उनके पास ज्ञान तो होगा लेकिन जीवन नहीं होगा। लेकिन अगर आप शिष्य बनाएंगे तो वे जाकर और *शिष्य* बनाएंगे। इसलिए *जीवन* को आगे बढ़ाना बुनियादी बात है।

पुरानी वाचा में मिलाप वाला तम्बू कलीसिया का एक चित्र प्रस्तुत करता है। उस तम्बू में, जैसा आप जानते हैं, तीन भाग थे- *एक बाहरी आंगन, एक पवित्र स्थान, और एक महापवित्र स्थान* (जो परमेश्वर के रहने का स्थान था)।

बाहरी आंगन सिर्फ ऐसे विश्वासियों का प्रतीक है जिनके पाप क्षमा हो गए हैं। वे स्थानीय कलीसिया में अपने ऊपर कोई ज़िम्मेदारी नहीं लेते। वे सभाओं में आते हैं, संदेश सुनते हैं, दान देते हैं, प्रभु-भोज लेते हैं और अपने घर चले जाते हैं। पवित्र स्थान के लोग वे हैं जो कलीसिया में किसी-न-किसी रूप में कुछ सेवा करना चाहते हैं- उन लेवीयों की तरह जो दीपदान जलाते थे और वेदी पर धूप रखते थे। लेकिन महापवित्र स्थान में प्रवेश करने वाले वे हैं जो *नई वाचा* में प्रवेश करते हैं, परमेश्वर के साथ संगति चाहते हैं, और दूसरे शिष्यों के साथ एक देह में जुड़े रहते हैं। वे अपने जीवन द्वारा सेवकाई करते हैं और असली कलीसिया तैयार करते हैं, कार्यशील कलीसिया, वह जो शैतान से युद्ध करती है और मसीह की देह को शुद्ध बनाए रखती है। लेकिन बहुत सी कलीसियाओं में, *ऐसा कोई केन्द्रीय मर्म-स्थान* नहीं होता।

प्रत्येक अच्छी या बुरी कलीसिया में- जो *बाहरी आंगन* में होते हैं, वे हमेशा एक जैसे होंगे- अनमने, सांसारिक, अपने स्वार्थ की खोज में रहने वाले, धन के प्रेमी, और सुख और भोग-विलास को चाहने वाले। लेकिन एक अच्छी कलीसिया में हमेशा ही अगुवों का एक ऐसा केन्द्रीय समूह होता है। यह समूह ही यह निश्चित करता है कि एक मण्डली को किस दिशा में जाना है।

ऐसा केन्द्रीय मर्म-स्थान अकसर दो लोगों से शुरू होता है जो एक-दूसरे के साथ एक हो गए हैं। परमेश्वर उनके साथ होता है और वे आकार और एकता में बढ़ना शुरू हो जाते हैं। एक मानवीय देह की रचना भी माता के गर्भ में दो *भिन्न् इकाईयों* के एक हो जाने से शुरू होती है। जब वह भ्रूण बढ़ना शुरू होता है, तो सभी कोषाणु एक साथ जुड़े रहते हैं। लेकिन अगर वे कोषाणु एक-दूसरे से अलग होने लगेंगे तो उस बच्चे का अंत हो जाएगा! मसीह की देह की अभिव्यक्ति के रूप में एक स्थानीय कलीसिया का बढ़ना भी ऐसा ही होता है। अगर मर्म-स्थान बिखर जाएगा, तो बाहरी ढांचे के एक संस्था के रूप में बने रहते हुए भी, असली कलीसिया टूट जाएगी!

इब्रानियों की पुस्तक बाइबल में एक ऐसी पुस्तक है जो नई वाचा और पुरानी वाचा के बीच का फर्क़ बताती है। दुर्भाग्यवश बहुत से मसीही लोगों में इब्रानियों एक लोकप्रिय पुस्तक नहीं है। रोमियों, फिलिप्पयों, इफिसियों लोकप्रिय हैं लेकिन इब्रानियों नहीं! यह इसलिए है क्योंकि इब्रानियों में ठोस रोटी है, जबकि ज़्यादातर मसीहियों के अभी तक 'दूध के दाँत' भी नहीं निकले हैं। वे अभी तक बच्चे हैं। इब्रानियों का पहला ही पद यह कहता है कि प्राचीनकाल में परमेश्वर ने नबियों के द्वारा बातें कीं, लेकिन अब उसने अपने पुत्र के द्वारा

हमसे बातें की हैं। पुरानी वाचा ज़्यादातर परमेश्वर की तरफ से *आज्ञाओं* का दिया जाना था जिसमें यही था कि *'तुम्हें यह करना है,'* या *'तुम्हें यह नहीं करना* है। लेकिन नई वाचा परमेश्वर के पुत्र द्वारा ***जीवन*** का दिया जाना है।

यही वजह है कि पिता ने यीशु को एक पुत्र के रूप में पृथ्वी पर भेजा। यीशु को एक पूरे वयस्क पुरुष के रूप में भेजने में भी परमेश्वर को कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन वह एक बच्चे के रूप में इसलिए आया कि उसे बचपन से ही हमारे जैसे सारे अनुभव हों और वह हमारी ही तरह सब बातों में परखा जाए। लेकिन ज़्यादातर मसीही यीशु के बारे में उसकी साढ़े तीन साल की सेवकाई और उसकी सूली पर हुई मृत्यु के बारे में ही सोचते हैं। मैं सोचता हूँ कि ऐसा कहना सही होगा कि 99 प्रतिशत विश्वासी यीशु द्वारा नासरत में बिताए गए उसके जीवन के 30 सालों के बारे में कभी नहीं सोचते। वे उसके जन्म के बारे में सोचते हैं। इसका उत्सव प्रतिवर्ष मनाया जाता है। वे उसकी मृत्यु और मर-के-जी-उठने के बारे में सोचते हैं। और वे उसके द्वारा किए गए सारे चिन्ह् व चमत्कारों के बारे में सोचते हैं। और बस इससे आगे नहीं।

कोई भी उसके जीवन के अधिकांश भाग के बारे में नहीं सोचता। उसकी सेवकाई उसके जीवन का सिर्फ 10 प्रतिशत हिस्सा थी - उसके साढ़े तैंतीस साल में से सिर्फ साढ़े तीन साल। उसका जीवन और मृत्यु तो एक-दिवसीय घटनाएं थीं। उसके जीवन का मुख्य भाग उसके नासरत में बिताए तीस साल थे। उसकी पूरी सेवकाई उन तीस सालों पर आधारित थी। जिन संदेशों का उसने अपनी सेवकाई के दौरान प्रचार किया, उन्हें तैयार करने में उसे तीस साल लगे थे। उसने 'पहाड़ी उपदेश' का प्रचार ऐसे नहीं किया था जिस तरह आज के प्रचारक अपने संदेशों का प्रचार करते हैं-अपने पठन-कक्ष में बैठकर पुस्तकों और शब्द-कोशों की मदद से टीका-टिप्पणियाँ लिखते हुए, तीन स्पष्ट मुद्दे तैयार कर लेना जो तीनों एक ही अक्षर से शुरू होते हों! नहीं। वह संदेश उसके जीवन में से आया था। इसलिए वह इतना सामर्थ्य से भरा था, और इसलिए लोग उसके उपदेश से चकित हो गए थे (मत्ती 7:28, 29)।

पुरानी वाचा में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर यिर्मयाह से सिर्फ *कुछ ख़ास दिनों में* ही बात करता था। जो कुछ परमेश्वर उससे कहता था, वह उसे अपने सेवक बारूक को लिखवाता था, जो उसे हू-ब-हू वैसे ही लिख देता था। परमेश्वर यहेज़केल से भी *कुछ ख़ास दिनों में* बात करता था और उसे वह बताता था जो उसे यहूदा के लोगों से कहना होता था। और यहेज़केल जाकर लोगों को हू-ब-हू वही बता देता था। वह अच्छा था। अगर हम आज ऐसा प्रचार भी कर सकें तो वह एक ज़बरदस्त प्रचार होगा!

लेकिन नई वाचा की सेवकाई इससे *बेहतर* है! परमेश्वर यीशु से सिर्फ कुछ ख़ास दिनों में ही बात नहीं करता था जैसा कि पुरानी वाचा के नबियों के साथ होता था। परमेश्वर यीशु से प्रतिदिन बात करता था और यीशु लोगों से प्रतिदिन बात करता था। उसकी सेवकाई उसके जीवन में से आती थी। *'जीवन के जल की नदियाँ बह निकलेंगी'* का यही अर्थ है (यूहन्ना 7:38)।

इस सत्य की ज्योति में, आपके लिए यह सवाल करना अच्छा होगा कि अपनी कलीसिया में आप *नई वाचा* के शिष्य बना रहे हैं या *पुरानी वाचा* की धार्मिकता की ओर मन फिराने वाले लोग तैयार कर रहे हैं? इस सवाल के जवाब पर यह निर्भर होगा कि आप स्वयं नई वाचा के सेवक हैं या पुरानी वाचा के सेवक हैं!

पुरानी वाचा का सेवक सिर्फ एक *संदेशवाहक* था। एक संदेश पहुँचाने के लिए आपके पास सिर्फ एक अच्छी स्मरण-शक्ति होनी चाहिए। लेकिन नई वाचा में, परमेश्वर हमें दूसरों को देने के लिए एक संदेश नहीं देता बल्कि उन्हें देने के लिए *अपना जीवन* देता है! तब आपकी जिस बात की ज़रूरत है वह अच्छी स्मरण-शक्ति नहीं, बल्कि अच्छे जीवन की ज़रूरत है-एक ईश्वरीय जीवन!

मैं इसके बीच के अंतर का एक उदाहरण देता हूँ: अगर आप नल में से थोड़ा पानी भरें (परमेश्वर का संदेश), और उसे उण्डेल दें, तो वह *पुरानी वाचा* की सेवकाई होगी। आप दोबारा जाकर और पानी भर सकते हैं (परमेश्वर का एक और संदेश), और जाकर उसे फिर उण्डेल सकते हैं।

लेकिन *नई वाचा* में, हमारे अन्दर जीवन के जल का स्रोत् दिया जाता है (स्वयं यीशु मसीह का जीवन)। और वह हममें से निरंतर बहता रहता है। इसलिए हमें बार-बार एक संदेश पाने के लिए परमेश्वर के पास जाने की ज़रूरत नहीं होती। *वह हमें संदेश बना देता है। हमारा जीवन* ही वह संदेश है और हम उसमें से बोलते हैं।

बहुत से लोगों की *उण्डेलने* वाली सेवकाई होती है। कुछ लोगों के पास उण्डेल देने के बाद देने के लिए *कुछ नहीं* बचता, कुछ के पास *कुछ* बचता है। लेकिन दोनों ही उण्डेलने की सेवकाई कर रहे हैं। दोनों ही सूख जाते हैं।

लेकिन यीशु ने सामरी स्त्री से कहा कि वह उसके अन्दर *अनन्त जीवन का स्रोत्* दे देगा जो उसके अन्दर से निरंतर बहता रहेगा (*अनन्त जीवन* का अर्थ स्वयं परमेश्वर का जीवन है।)

यही वह *जीवन* है जो प्रभु चाहता है कि हममें से भी प्रवाहित हो-सिर्फ एक *संदेश* नहीं। *यह नई वाचा की सेवकाई है।*

अध्याय 9

परमेश्वर की सामर्थ्य से सेवा करने वाला

एक आत्मिक अगुवा अपना सारा काम *परमेश्वर की इच्छा में* करता है, *परमेश्वर की सामर्थ्य से* करता है, और *परमेश्वर की महिमा के लिए* करता है। इसलिए अंतिम परीक्षा में वह *सोना, चांदी और मूल्यवान पत्थरों के रूप में* प्रकट होगा (1 कुरि. 3:12-15)।

दूसरा कुरिन्थियों 3:5,6 में पौलुस कहता है कि हम नई वाचा के तब तक सेवक नहीं बन सकते जब तक परमेश्वर हमें इस योग्य न बनाए। एक आत्मिक अगुवा क्योंकि उस भरपूरी में से सेवा करता है जो परमेश्वर उसे देता है, इसलिए वह अपने परिश्रम के लिए कोई श्रेय नहीं ले सकता।

अगर हममें से प्रवाहित होकर लोगों को आशिष देने वाला वास्तव में ही परमेश्वर का जीवन है, तो उसके लिए हम कोई श्रेय नहीं ले सकते- क्योंकि हम उसका श्रेय नहीं ले सकते जिसे हमने उत्पन्न ही नहीं किया है!

उदाहरण के तौर पर, अगर मैं यहाँ एक ऐसा केक लेकर आऊँ जो *किसी और ने बनाया है*, और वह आप सबको बाटूँ, और आप सब उसकी सराहना करते हुए कहें, 'वाह, भाई ज़ैक, यह केक तो लाजवाब है!'- तो मैं उसमें गर्व करने के *प्रलोभन* में भी नहीं पड़ूँगा क्योंकि *मैंने उसे नहीं बनाया है!* लेकिन उसे अगर मैंने बनाया होता, तो यह सोचकर कि मैंने एक अच्छा काम किया है, मैं गर्व से भर सकता था। लेकिन मैं ऐसे किसी काम का श्रेय कैसे ले सकता हूँ जो किसी दूसरे ने किया है?

यह एक तरीक़ा है जिससे हम यह जान सकते हैं कि जो हम दूसरों को दे रहे हैं, क्या वह *हममें **परमेश्वर** द्वारा* तैयार किया गया है, या वह हम ख़ुद *उत्पन्न* कर रहे हैं? क्या हम अपनी सेवकाई (केक) पर गर्व करते हैं? तब वह

सेवकाई (केक) हमारी ही तैयार की हुई होगी! परमेश्वर का उससे कुछ लेना-देना नहीं है। अगर वह परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, तो हमारे लिए उस पर गर्व करना सम्भव नहीं है।

आप क्या समझते हैं कि यीशु के शिष्यों ने जो रोटी और मछली लोगों में बाँटी थी, क्या वे उसका श्रेय स्वयं ले सकते थे? नहीं। जिस लड़के ने अपना खाना यीशु को दे दिया था, वह भी उसका श्रेय नहीं ले सकता था। शिष्यों ने सिर्फ वह *बाँटा* था जो यीशु ने उत्पन्न किया था।

परमेश्वर की स्तुति हो कि हम सिर्फ *बाँटने* वाले काम के लिए हैं, *उत्पन्न* करने का काम हमारा नहीं है। इसलिए हम हर समय पूरे विश्राम की अवस्था में रह सकते हैं। तनाव तभी आता है जब हमें बाँटना नहीं *उत्पन्न* करना पड़ता है! यह सच है कि बाँटने के काम में हम थक सकते हैं। लेकिन उसमें कोई *तनाव* नहीं होता। हमारी पूर्णता परमेश्वर में से है। हम जानते हैं कि हम स्वयं ऐसा कुछ उत्पन्न नहीं कर सकते जो किसी काम का हो। इसलिए हम ऐसी कोशिश भी नहीं करते।

यह याद रखें कि पवित्र-आत्मा के बिना आप जो कुछ भी हासिल करते हैं वह मानवीय है और उसका कोई *अनन्त* मूल्य नहीं है। आप प्रार्थना के बिना, परमेश्वर की मदद माँगे बिना, और पवित्र-आत्मा की सामर्थ्य के बिना प्रचार कर सकते हैं और बहुत कुछ हासिल कर सकते हैं। आपके अन्दर बहुत सी मानवीय योग्यताएं हो सकती हैं और उनके द्वारा आप बहुत कुछ कर सकते हैं। लेकिन एक दिन आपको यह पता चलेगा कि परमेश्वर की नज़र में वह लकड़ी और घास-फूस ही था।

आप यह सोच सकते हैं कि आप बहुत अच्छे प्रचारक हैं क्योंकि आप लोगों को भावनात्मक रूप में बहुत उत्तेजना से भर सकते हैं। लेकिन यह देखें कि संगीत जगत के सितारे लोगों को किस तरह उत्तेजना से भर देते हैं। वे किसी भी प्रचारक से ज़्यादा लोगों को उत्तेजित कर सकते हैं! लेकिन वह सब सिर्फ खोखली भावना ही है।

या आप एक ऐसे ज्ञानी विद्वान हो सकते हैं जो लोगों के मस्तिष्क को आंदोलित कर उन्हें घण्टों तक मंत्र-मुग्ध कर सकते हैं। यह भी मानवीय जैविक शक्ति है। यह संभव है कि उसमें ईश्वरीय *जीवन* का कोई संचार नहीं है।

आप अपनी सेवकाई में पवित्र-आत्मा की मदद बिना जो कुछ भी हासिल करते हैं, वह एक दिन इस संसार के साथ मिट जाएगा। इस बात पर आप पूरा

यक़ीन कर सकते हैं। मुझे नहीं मालूम कि आपको मेरी बात पर विश्वास हो रहा है या नहीं। लेकिन अगर आपको यक़ीन हो रहा है, तो आप *मानवीय* तरीक़े अपना कर अपना समय नष्ट नहीं करेंगे।

मैं अपना समय ऐसी किसी बात को बनाने में ख़र्च करना नहीं चाहता जो अनन्त में नाश हो जाने वाली है। मैं उस सामर्थ्य से काम करना चाहता हूँ जो परमेश्वर देता है। हमारी परिपूर्णता परमेश्वर में से आती है।

यीशु के समयकाल में फरीसी बाइबल के महान् ज्ञाता थे। वे अपने धर्म-सिद्धान्त में *कट्टरवादी* थे जबकि सदूकी *उदारवादी* थे। हमें यह इसलिए मालूम है क्योंकि यीशु ने स्वयं उनके धर्म-ज्ञान को सही ठहराते हुए अपने शिष्यों से कहा था कि उन्हें वह करना चाहिए जो फरीसी सिखाते हैं (मत्ती 23:3)। वे फरीसी उन दिनों के बाइबल कॉलेजों के मुख्य प्राध्यापक थे। यरूशलेम की जिस सैमिनरी में तर्शिश का शाऊल पढ़ता था, उसका प्राचार्य गमलीएल था। उनमें से बहुत से फरीसी मिशन के भी बड़े अगुवे थे। यीशु ने उनके बारे में यह कहा कि वे एक मनुष्य को अपने मत में लाने के लिए जल-थल में फिरते रहते हैं (मत्ती 23:15)। उस काम में काफी बलिदान और श्रद्धा लग रही होगी।

फिर भी हम देखते हैं कि यीशु की सेवकाई का मुख्य भाग इन कट्टरपंथी सैमिनरी प्राध्यापकों और मिशन के अगुवों का सामना करने में बीता था! हमें इसका कारण जानने की ज़रूरत है। क्योंकि अगर हम यह नहीं जानेंगे तो हम भी उनके जैसे बन सकते हैं। और फिर प्रभु निरंतर हमारा सामना करेगा।

ये अगुवे हमेशा यीशु से यह सवाल करते रहते थे कि वह और उसके शिष्य यह काम क्यों *करते थे* और वह काम *क्यों नहीं करते* थे!

मैंने यही मनोभाव उन बहुत से 'विश्वासियों' में भी देखा है जो मेरी आलोचना करते हैं। वे यह सवाल करते हैं कि मैंने एक बात को वहाँ क्यों बोला और ऐसा शब्द क्यों इस्तेमाल किया। उन्हें *'शब्दों पर तर्क करना'* बहुत अच्छा लगता है (1 तीमु. 6:4)- वही बात जिससे बचने के लिए पौलुस ने तीमुथियुस से कहा था। लेकिन उन्हें ख़ुद उनके अन्दर ईश्वरीय जीवन की कमी का कोई अहसास नहीं होता! वे मुझे ऐसे लोगों की याद दिलाते हैं जो एक मरे हुए व्यक्ति की अंगुलियाँ गिनते हैं कि वे पूरी हैं या नहीं! और अगर एक अंगुली का एक नाख़ून नहीं है, तो वे हंगामा खड़ा कर देते हैं!

मेरे लिए तो मरे हुए एक ऐसे व्यक्ति से, जिसकी सारी अंगुलियाँ और नाख़ून मौजूद हैं, एक ऐसा जीवित व्यक्ति अच्छा है जिसकी पाँचों अंगुलियाँ

नहीं हैं! बहुत से धर्म-ज्ञानी अपने धर्म-सिद्धांतों में ऐसे ही मृतक रूप में सही हो सकते हैं, लेकिन वे *मृतक* और *सही* दोनों हैं! मैं एक ऐसे भाई के साथ मिलकर काम कर सकता हूँ जिसका बपतिस्मे के बारे में धर्म-ज्ञान तो ग़लत है लेकिन जो पवित्र-आत्मा से भरा है, लेकिन मैं ऐसे व्यक्ति के साथ काम करना न चाहूँगा जो बपतिस्मे के बारे में तो सही है लेकिन जो दरवाज़े में जड़ी कील की तरह मरा हुआ है!

मुझे आप ग़लत न समझ लें। मैं अपने पूरे मसीही जीवन में मसीही धर्म-सिद्धान्त के बारे में बहुत सचेत रहा हूँ, और मैंने बहुत से मसीही समूहों को इसलिए छोड़ दिया था क्योंकि वे परमेश्वर के *पूरे* परामर्श का प्रचार नहीं कर रहे थे। तो मैं धर्म-सिद्धान्त का मूल्यांकन कम नहीं कर रहा हूँ। लेकिन मैं सिर्फ यही कह रहा हूँ कि जीवन और आत्मिकता ज़्यादा ज़रूरी हैं।

एक दिन जब यीशु ने फरीसियों को डाँट कर सही किया, तो उसके शिष्यों ने उसके पास आकर कहा, "क्या तू जानता है कि फरीसियों ने इस कथन से ठोकर खाई है?" यीशु ने उनसे कहा कि वे उन फरीसियों की चिंता न करें क्योंकि "प्रत्येक पौधा जो मेरे पिता ने नहीं लगाया उखाड़ दिया जाएगा" (मत्ती 15:12, 13)।

मैं चाहता हूँ कि आप इस अंतिम कथन पर थोड़ा विचार करें। आप जब भी प्रचार करते हैं, आप एक बीज बोते हैं। जो आप बो रहे हैं, अगर वह परमेश्वर की तरफ से नहीं है, तो एक दिन वह उखाड़ दिया जाएगा।

अगर हम पवित्र-आत्मा की भरपूरी में से अपना काम करेंगे, तो वह अनन्त में बना रहेगा। लेकिन अगर हम प्रार्थना किए बिना, एक असहाय निर्भरता के साथ परमेश्वर से सीखे बिना, और पवित्र आत्मा की मदद बिना अपना काम करेंगे, तो एक दिन वह अवश्य ही उखाड़ दिया जाएगा।

मसीही जीवन के ऐसे बहुत से पहलू हैं जिनके लिए हमें पवित्र आत्मा की सामर्थ्य की ज़रूरत नहीं होती, बस बहुत से धन और एक योग्य प्रशासक की ज़रूरत होती है।

उदाहरण के तौर पर, अगर आप एक मसीही सभा का आयोजन कर रहे हैं, तो उसमें बहुत सा काम होता है। एक सभागृह चाहिए, आमंत्रण भेजने होते हैं, लोगों के ठहरने के इंतज़ाम करने पड़ते हैं, खाना तैयार करना होता है आदि, आदि। लेकिन यह सब एक ऐसे कुशल प्रशासक द्वारा भी किया जा सकता है जो मसीही भी नहीं है। असल में, बहुत सी सांसारिक सभाएं मसीही सभाओं

से ज़्यादा अच्छी तरह आयोजित होती हैं। लेकिन मसीही सभा का एक भाग जो अनन्त में बना रहेगा वह वचन की सेवा है- और वह भाग पवित्र आत्मा के अभिषेक के साथ ही होना चाहिए!

मैं अच्छे प्रबंधन के मूल्य को कम नहीं कर रहा हूँ। किसी भी सभा को सफल बनाने के लिए अच्छा इंतज़ाम ज़रूरी है। लेकिन याद रखें कि अनन्त बात सिर्फ वही है जो पवित्र-आत्मा की सामर्थ्य में पूरी हुई है।

इस बात को हम अपनी *सेवकाई* में लागू करें। हमें अपने आप से यह सवाल करने की ज़रूरत है कि हमारी सेवकाई का ऐसा कौन सा भाग है जो सिर्फ मानवीय प्रशिक्षण या मानवीय संसाधनों का परिणाम है। अगर हम अपने प्रति ईमानदार होंगे, तो इस सवाल का जवाब आपको चकित कर सकता है।

यीशु मसीह आज, कल, और युगानुयुग एक सा है। आज भी वह उन लोगों का सामना करता है जो बाइबल कॉलेज के ऐसे प्राध्यापक और मिशनों के ऐसे अगुवे हैं जिनके पास जीवन के बिना ज्ञान है, और जो पवित्र आत्मा के अभिषेक के बिना संदेश देते हैं। उनके समय में प्रेरितों का ऐसे लोगों से सामना हुआ था, और, अगर हम यीशु के पीछे चलेंगे, तो हमारे समय में हमारा भी ऐसे लोगों से सामना होगा।

मैं प्रभु को नाराज़ करके ऐसे लोगों को खुश करने की बजाए, प्रभु के साथ चलते हुए ऐसे लोगों का सामना करना ज़्यादा अच्छा मानूँगा। असल में, अगर परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए सारे संसार का सामना करना ज़रूरी होगा, तो मैं वह करने के लिए भी तैयार हूँ। अगर हम मनुष्यों को प्रसन्न करने वाले होंगे तो हम परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते (गला. 1:10)।

इसलिए हम अपनी सेवकाई के लिए असहाय होकर पूरी तरह परमेश्वर पर निर्भर हो जाएं, और स्वयं पर हमेशा पवित्र-आत्मा के अभिषेक की लालसा करते रहें।

अध्याय 10

आत्मिक अधिकार का इस्तेमाल करने वाला

एक आत्मिक अगुवा आत्मिक अधिकार में होकर काम करेगा।

लोग यीशु के प्रचार से चकित थे क्योंकि उन्होंने फरीसियों के सिखाने में, जो उन्हें वर्षों से सिखा रहे थे, और यीशु के सिखाने में एक फर्क़ देखा। फारसियों के पास बहुत ज्ञान था। यीशु के पास उनसे भी ज़्यादा ज्ञान था। लेकिन उसके *ज्ञान* ने नहीं, उसके *अधिकार* ने उन्हें चकित किया था (मत्ती 7:29)।

अगर हमारी सेवकाई में हमारे पास ज्ञान है लेकिन आत्मिक अधिकार नहीं है, तो हम भी फरीसियों की तरह हो जाएंगे। जो कुछ यीशु ने बोला, परमेश्वर ने उन शब्दों को सत्यापित किया। आत्मिक अधिकार के साथ बोलने का यही अर्थ है।

यूहन्ना 15:26,27 में यीशु ने अपने शिष्यों से कहा कि पवित्र आत्मा उनके साथ मिलकर गवाही देगा। इसका अर्थ यह है कि वे जो भी प्रचार करेंगे, पवित्र आत्मा उसे सत्यापित करेगा। मैं तो यही चाहूँगा कि मेरी सेवकाई में हमेशा ऐसा ही हो। जब मैं यीशु की साक्षी दूँ तो पवित्र आत्मा भी मेरे साथ मिलकर साक्षी दे। यह ज़रूरी है कि वह मेरे सुनने वालों से कहे, "इसकी सुनो, यह परमेश्वर की तरफ से है।" तब मैं ईश्वरीय अधिकार के साथ बोलूँगा। लेकिन अगर मैं सिर्फ यीशु के बारे में एक बिलकुल सही बयान देता हूँ और अगर पवित्र आत्मा उसे सत्यापित नहीं करता, तो मुझे झूठा शिक्षक नहीं कहा जाएगा, क्योंकि मेरे सभी धर्म-सिद्धान्त सुसमाचार आधारित होंगे। लेकिन फिर भी मैं जीवन की नहीं मृत्यु की ही सेवकाई कर रहा होऊँगा।

ऐसे बहुत से तरीक़े हैं जिनके द्वारा हम लोगों को अपने अधिकार में ले सकते हैं। इनमें *मानवीय* तरीक़े होते हैं, *धार्मिक* तरीक़े होते हैं, और *आत्मिक* तरीक़े होते हैं। और इन तीनों में बहुत फर्क़ है। यीशु का अधिकार न तो

मानवीय था और न ही धार्मिक था। वह कभी एक पृथ्वी के राजा की तरह या इस्राएल के धर्म-गुरु की तरह नहीं बोला, और न ही उसने उनके जैसे काम किए। उसका अधिकार ईश्वरीय और आत्मिक था।

मानवीय अधिकार का एक अच्छा उदाहरण वह अधिकार है जो फिल्मी और संगीत के सितारों के पास होता है। वह दृश्य देखने लायक़ होता है जब लोग उनकी आराधना करते हैं और उनके दीवाने हो जाते हैं। लोग बारिश में और धूप में उनकी एक झलक पाने के लिए घण्टों इंतज़ार करते हैं। उन्हें लोगों के ऊपर बहुत अधिकार प्राप्त होता है। वे लोगों के मनों और भावनाओं पर राज करने के लिए अपने अधिकार और मानवीय क्षमताओं को इस्तेमाल करते हैं- और लोग इसके लिए उन्हें पैसा भी देते हैं! आज मसीही जगत के बहुत से प्रचारकों में भी इस तरह का अधिकार पाया जाता है। यह मानवीय सामर्थ्य है जो पवित्र आत्मा की ओर से नहीं है।

मानवीय अधिकार को इस्तेमाल करने का एक और तरीक़ा धन के *द्वारा* है। आज संसार उन लोगों के वश में नहीं है जिनके पास *हथियार* हैं, बल्कि उनके वश में है जिनके पास *धन* है। युद्ध में और चुनावों में धन बहुत महत्वपूर्ण घटक होता है। हरेक देश के व्यापारी वर्ग को फलने-फूलने के लिए राजनेता को प्रसन्न रखना होता है। और राजनेता को राजनैतिक अधिकार पाने के लिए धन की ज़रूरत होती है, इसलिए उसे व्यापारी वर्ग को प्रसन्न रखना होता है। इसलिए, पैसे में बहुत ताक़त होती है। और मसीही जगत में भी धन का व्यापक इस्तेमाल होता है। निश्चय ही धन से बहुत से अच्छे काम हो सकते हैं। लेकिन क्योंकि धन में बहुत शक्ति होती है, इसलिए वह बहुत हानि भी कर सकता है।

अगर मसीही काम कहीं भी धन की शक्ति द्वारा नियंत्रित होता है, तो वह कभी भी *आत्मिक* काम नहीं हो सकता। यीशु ने धन और परमेश्वर को एक-दूसरे के प्रत्यक्ष विरोधी के रूप में दर्शाया था। उसने कहा कि सिर्फ परमेश्वर और ममोन (भौतिक धन) ही संसार में दो ऐसे स्वामी हैं जो मनुष्य का ध्यान आकर्षित करने में एक-दूसरे से मुक़ाबला करते हैं (लूका 16:13)।

एक मसीही अगुवे का वह अधिकार जो दूसरों को पैसा देने द्वारा है, आत्मिक अधिकार नहीं है। संसार में भी, और मसीही जगत में भी, जिसके पास पैसा है वही सब कुछ अपने वश में रखता है। लोग ऐसे हरेक व्यक्ति के सामने झुक जाते हैं जिनके पास पैसा है। अगर आप किसी को पैसा देंगे, तो जो भी आप उससे कहेंगे, वह करने के लिए वह तैयार हो जाएगा! यह बात धर्म-निर्पेक्ष कम्पनियों और मसीही जगत दोनों के लिए सही है।

लगभग हरेक पास्टर अपनी कलीसिया के बोर्ड के सदस्यों के वश में रहता है, क्योंकि वही उसका वेतन निर्धारित करते हैं। ऐसा पास्टर उसके बोर्ड के सदस्यों को नाराज़ करने वाली कोई बात कहने का दुःसाहस नहीं कर सकता! कलीसियाओं में अकसर सबसे धनवान व्यक्ति ही बोर्ड के सदस्य होते हैं। और इन धनवान व्यक्तियों को ही अकसर *सबसे ज़्यादा डाँट* की ज़रूरत होती है। लेकिन एक पास्टर उन्हें कैसे डाँट सकता है अगर *उसका मुँह उन्हीं के दिए हुए रुपयों से भरा हुआ है?* वह ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए उसे उन धनवान लोगों के कानों की खुजली मिटाते हुए वही कहना पड़ता है जो वे सुनना चाहते हैं। अगर वह उन्हें नाराज़ करेगा तो वे उसके वेतन में होने वाली वार्षिक वृद्धि को रोक देंगे, और यह बात उसका विचार बदल देने के लिए काफी होती है। वह अपने ग़रीब परिवार के बारे में सोचेगा जिन्हें संघर्ष करना पड़ेगा। उसे अपना सुविधाजनक पास्टरीय आवास ख़ाली करना पड़ेगा, और उसे अपने बच्चों को उनके अच्छे स्कूल में से निकाल लेना पड़ेगा। ऐसे विचार उसे फौरन ही बोर्ड की अधीनता में ले आएंगे और वह चुपचाप आधिकारिक फैसले के साथ सहमत हो जाएगा! आज भारत में एक नबी के मुश्किल से ही मिल पाने की यही मुख्य वजह है। लगभग हरेक प्रचारक धन के लोभ में पड़ चुका है। ऐसे प्रचारक आत्मिक अधिकार का इस्तेमाल कैसे कर सकते हैं?

जिन भाइयों को दूसरों के जीवनों पर अधिकार प्राप्त है, मैं उनसे यह कहना चाहता हूँ कि अगर आप धन द्वारा किसी को अपने अधिकार में रखते हैं, तो आपके द्वारा इस्तेमाल हो रहा अधिकार *आत्मिक* नहीं है।

यीशु ने किसी को पैसे से अपने वश में नहीं रखा। उसका कोई भी शिष्य पैसों के लिए उसका अनुयायी नहीं बना था; उन्हें देने के लिए उसके पास धन नहीं था। उसने उनसे ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की कि सेवा-निवृत्त होने के बाद उन्हें इस संसार में यह या वह लाभ होगा, बल्कि उनके लिए सिर्फ पीड़ा और परीक्षा ही थी। उसने उन्हें सिखाया कि वे पहले परमेश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज करें और जिन भौतिक वस्तुओं की उन्हें ज़रूरत है (खाने और कपड़े की बुनियादी ज़रूरतें), वे उनके स्वर्गीय पिता द्वारा पूरी की जाएंगी।

यीशु ने अपने शिष्यों को धन बिना ही संसार को सुसमाचार सुनाने के लिए भेजा जिससे कि वे कभी किसी को धन द्वारा आकर्षित (या वश में) न कर सकें। फिर भी उन्होंने उस समय के संसार में सुसमाचार सुनाने का काम हमसे कहीं बेहतर किया था, इतना बेहतर कि हम अपने सारे धन, सारे उपकरणों और अपनी बहुत सी सुसमाचारीय सभाओं से भी अब तक वैसा नहीं कर पाए हैं!

परमेश्वर के काम में आर्थिक सामर्थ्य एक ऐसी बात है जिसके प्रति हमें बहुत सचेत रहने की ज़रूरत है, क्योंकि वह हमें आत्मिक अधिकार से वंचित कर सकता है।

संगीत की सामर्थ्य एक और ऐसी बात है जिससे हमें सचेत रहने की ज़रूरत है। रॉक संगीत लोगों को उस हद तक मोहित कर सकता है कि वे आत्म-हत्या तक कर लेते हैं। आज संसार में इस सामर्थ्य के बहुत से स्वरूप हैं। हमें यह ध्यान रखना होगा कि हम इन्हें आत्मिक सामर्थ्य समझ लेने की भूल न करें। अगर हम आत्मिक सामर्थ्य और जैविक-सामर्थ्य के बीच फर्क़ करना नहीं जानते, तो हमें अपनी सेवकाई की सफलता के लिए स्वयं को धोखा देना बहुत आसान हो जाएगा।

हममें से कुछ लोग जिस सामर्थ्य का इस्तेमाल करते हैं, यह हो सकता है कि वह न तो धन-की-सामर्थ्य हो और न संगीत-की-सामर्थ्य हो बल्कि *ज्ञान* की सामर्थ्य हो। यह भी जीव की सामर्थ्य है-और यह आत्मिक अधिकार से बहुत अलग है। हम लोगों को अपनी योग्यताओं से प्रभावित कर सकते हैं जिससे कि वे हमारी बात सुनें! यह हो सकता है कि आप धर्म-सैद्धान्तिक रूप में इतने प्रशिक्षित हों कि आप पतरस द्वारा उसकी पत्री में इस्तेमाल किए गए युनानी शब्दों के उन मूल अर्थों को भी बता सकते हैं जिन्हें स्वयं पतरस भी नहीं जानता था!

लेकिन एक आत्मिक व्यक्ति बाइबल को एक अलग ही तरीक़े से सिखाएगा- और उसके परिणाम भी अलग ही होंगे। बाइबल को या तो मानवीय ज्ञान की सामर्थ्य के अनुसार सिखाया जा सकता है, या पवित्र-आत्मा की सामर्थ्य द्वारा सिखाया जा सकता है। और सिखाने के इन दोनों तरीक़ों के बीच, और उनके परिणामों के बीच में भी बहुत बड़ा फर्क़ है। आज कलीसिया में सबसे बड़ी ज़रूरतों में से एक यह है कि उसके अगुवों की सेवकाई में आत्मिक अधिकार की सामर्थ्य प्रदर्शित होना चाहिए। आत्मिक अधिकार धार्मिक अधिकार से बहुत अलग होता है। आज हमें मसीही जगत में सामान्य तौर पर धार्मिक अधिकार ही नज़र आता है, जिसमें मज़बूत अगुवे अपने झुण्ड को अपने वश में रखते हैं।

परमेश्वर ने यह नहीं ठहराया कि एक स्थानीय कलीसिया को एक *लोकतंत्र* की तरह चलाया जाए जहाँ हरेक व्यक्ति मत्ती डाल कर उसके अगुवे का चुनाव करे। न ही परमेश्वर ने यह ठहराया कि वह एक तानाशाही हो जहाँ एक मज़बूत अगुवा ग़रीब विश्वासियों पर राज करे और उन्हें उसकी आज्ञापालन करने के लिए मजबूर करता रहे।

जब हम परमेश्वर के वचन का प्रचार करते हैं, तो दूसरे लोगों को अपने अधिकार में ले लेना हमारे लिए आसान होता है। लोग हमारी सेवकाई की सराहना करते हैं क्योंकि इससे उन्हें मदद मिलती है। फिर यह आसान हो जाता है कि हम अपने प्रशंसकों के लिए *एक गौण देवता* जैसे बन जाएं। हमें सदा इस बात से डरते रहना चाहिए। हमारे वरदान के द्वारा जो अधिकार हमें दूसरों पर मिला है, उससे हमें कभी कोई ग़लत फायदा नहीं उठाना चाहिए। अगर हम यह पाते हैं कि वे हमसे लिपटने लगे हैं, तो हमें उनकी भलाई और आत्मिक उन्नति के लिए, उन्हें धीरे से प्रभु के हाथों में सौंप देना चाहिए। हमारी बुलाहट मसीह की देह तैयार करना है, अपना राज-पाट तैयार करना नहीं है। यही आत्मिक अधिकार पाने का तरीक़ा है।

पौलुस को परमेश्वर के पास से ऐसा आत्मिक अधिकार प्राप्त था कि वह कुरिन्थियों की कलीसिया में से एक व्यक्ति को शैतान के हाथ में सौंप सका कि उसके शरीर के काम का नाश हो और उसकी आत्मा को बचाया जा सके (1 कुरि. 5:5)। वह मनुष्य बाद में बचाया गया था और मन फिरा कर कलीसिया में लौट आया था। पौलुस ने उस कलीसिया की स्थापना की थी, और ऐसे संस्थापकों के पास वह आत्मिक अधिकार होता है जिसका इस्तेमाल कोई और नहीं कर सकता। ऐसे प्रेरितों के पास लोगों को तैयार करने के लिए उन्हें दिया गया ईश्वरीय अधिकार होता है। हमें भी इस तरह के *प्रेमपूर्ण* अधिकार की ही ज़रूरत है। हम प्रेरित पौलुस के जीवन में ऐसे आत्मिक अधिकार के बहुत से उदाहरण देखते हैं जो हमारे सामने बड़ी चुनौती रखते हैं।

जब शिष्यों ने यीशु को साढ़े तीन साल तक नज़दीक से जाँचा-परखा, तो उन्होंने यह देखा कि वह उनके आराधनालयों के अगुवों व प्रचारकों से बिलकुल अलग था। वे ऐसे किसी मनुष्य से नहीं मिले थे जो उसकी तरह जीता था और उसकी तरह बोलता था। उसके जीवन और उसकी सेवकाई में *अधिकार* था। यीशु को मिलने से पहले वे यही सोचते थे कि आत्मिक सेवकाई वही होती है जो उन्होंने अपने आराधनालयों के याजकों और अधिकारियों में देखी थी। और अगर वे यीशु को न मिले होते, तो वे उन याजकों और अधिकारियों को ही अपना आदर्श मान लेते। लेकिन अनुसरण करने के लिए अब उनके पास एक नया आदर्श था।

आज हमारे युवाओं के लिए हमें ऐसे बेहतर नमूने चाहिए जिन्हें अपना आदर्श मानकर वे उनका अनुसरण कर सकें।

अध्याय 11

हरेक भय से मुक्ति पाया हुआ

एक आत्मिक अगुवा मनुष्यों या परिस्थितियों से भयभीत होकर फैसला नहीं करेगा। मेरे घर के अगले कक्ष में, बड़े अक्षरों में यह वचन लिख कर टांगा हुआ है: "अगर आप परमेश्वर का भय मानेंगे, तो फिर आपको किसी का भय मानने की ज़रूरत नहीं रहेगी।" यह लिविंग बाइबल में यशायाह 8:12,13 का भावानुवाद है। इस पद ने पिछले 25 सालों में मेरी बहुत मदद की है।

मैं आपके साथ भय के बारे में कुछ ऐसे सत्य बाँटना चाहता हूँ जो मैंने प्रभु से सीखे हैं। *सबसे पहले* तो यह कि भय शैतान के शस्त्रागार में सबसे मुख्य हथियारों में से एक है।

दूसरी बात, कि अगर कभी-कभी मुझे भय की अनुभूति होती है तो इसमें मुझे दोषी महसूस करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि मैं अब तक देह में हूँ। इस बारे में हमें यथार्थवादी और ईमानदार होना चाहिए। प्रेरित पौलुस काफी ईमानदारी के साथ यह स्वीकार करता है कि ऐसे समय थे जब "उसके भीतर" भय था (2 कुरि. 7:5)।

तीसरी बात जो मैंने सीखी (और यह सबसे ज़रूरी है), कि अगर मुझमें भय भी है, तो भी मुझे उस *भय के आधार पर कभी कोई फैसला नहीं करना चाहिए*। मेरे फैसले हमेशा *परमेश्वर में विश्वास* पर आधारित होने चाहिए- जो भय से एक-दम उलट बात है। और मैंने बहुत वर्षों तक इसी तरह जीने का प्रयास किया है। और परमेश्वर ने मेरी मदद की है और मुझे बहुत उत्साहित किया है।

अब मुझे समझ आ गया है कि यीशु ने क्यों बार-बार यह कहा, "*मत डर, मत डर, मत डर।*" यह बात उतनी ही ज़रूरी है जितना नई वाचा की वह दूसरी बात जिस पर इसी तरह ज़ोर दिया है, "*पाप मत कर, पाप मत कर, पाप मत कर।*"

यीशु हमेशा *पाप* के विरोध में रहा, वह हमेशा *भय* के भी विरोध में रहा उसने हमसे कहा कि हम परमेश्वर के अलावा और किसी का भय न मानें (मत्ती 10:28)। इसमें हमारे सीखने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण पाठ है, क्योंकि एक आत्मिक अगुवे को कभी भय के आधार पर कोई फैसला नहीं करना चाहिए।

एक अन्य वचन जो वर्षों से मेरी बैठक में टंगा हुआ है, वह गलातियों 1:10 है: *"अगर मैं अब तक मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला होता, तो मैं मसीह का दास न होता।"*

अगर आप मनुष्यों को प्रसन्न करना चाहेंगे, तो आप कभी प्रभु के सेवक नहीं हो सकते। और मैं आपको बता सकता हूँ कि मनुष्यों को प्रसन्न करने के फंदे में से छूटना आसान नहीं होता।

भारत में हो रहे मसीही काम के बारे जो रिपोर्टें पश्चिम में भेजी जाती हैं, वे मूल रूप में वहाँ के लोगों को प्रभावित करने के लिए होती हैं, जिससे कि फिर वे यहाँ हो रहे काम के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करें। जब अपने काम के बारे में आप कोई रिपोर्ट तैयार करें, तो आपको अपने उद्देश्यों के प्रति बहुत सचेत रहने की ज़रूरत है।

इसी तरह, बहुत से संदेश भी, मनुष्यों को प्रभावित करने और उन्हें प्रसन्न करने के लिए तैयार किए जाते हैं। लेकिन जो ऐसे उद्दश्यों के साथ प्रचार करते हैं वे कभी मसीह के दास नहीं हो सकते। आपकी कलीसिया में अपरिपक्व विश्वासियों के एक समूह को इस बात में मूर्ख बनाना आसान होता है कि आप परमेश्वर के एक बड़े जन हैं। लेकिन आप न तो शैतान को और न ही परमेश्वर को मूर्ख बना सकते हैं। शैतान और परमेश्वर दोनों ही यह जानते हैं कि आप किस तरह के व्यक्ति हैं।

अगर आपके अन्दर यह भय है कि किसी व्यक्ति को अप्रसन्न करने से वह आपको कोई नुक़सान पहुँचा सकता है, तो आप हमेशा ही उसे ख़ुश करने की कोशिश करेंगे। लेकिन आप जब भी भय के आधार पर काम करते हैं, तो आप यक़ीन कर सकते हैं कि आपका मार्गदर्शन परमेश्वर नहीं शैतान कर रहा है।

अगर हम पीछे मुड़ कर अपने जीवन पर नज़र डालें तो हम पाएंगे कि हमने बहुत से फैसले डर की वजह से किए थे। उन सभी फैसलों में हमारी अगुवाई परमेश्वर ने नहीं की थी। यह हो सकता है कि उनमें से कई फैसलों के नतीजे बहुत गंभीर न रहे हों। लेकिन उनमें हम परमेश्वर के सर्वश्रेष्ठ से चूक गए हैं। हमें भविष्य में अलग तरह से काम करना होगा।

हमारे लिए भयभीत होना एक स्वाभाविक बात है–यह इसलिए क्योंकि हम मनुष्य हैं। जैसे, आप अभी जिस जगह बैठे हैं, अगर वहाँ आपके सामने अचानक एक कोबरा नज़र आ जाए, तो स्वाभाविक है कि आपको ज़ोरदार झटका लगेगा और आप कूद कर खड़े हो जाएंगे–आपकी नसों में एक आवेग आ जाएगा। यह स्वाभाविक है। लेकिन आप इस डर में ही अपना जीवन नहीं बिताते कि आप जहाँ जाएं वहाँ आपको हरेक कुर्सी के नीचे एक कोबरा के बैठे होने का डर हो!

इसी तरह, हमें किसी के भय में अपना *जीवन नहीं बिताना चाहिए।*

हमें मनुष्यों या शैतान के भय के वश में होकर कोई *फैसला नहीं लेना चाहिए*। हमारा हरेक फैसला परमेश्वर के भय पर और हमारे स्वर्गीय पिता में हमारे पूरे भरोसे पर आधारित होना चाहिए। सिर्फ तभी हम आश्वस्त हो सकते हैं कि हम पवित्र–आत्मा के मार्गदर्शन में चल रहे हैं।

परमेश्वर की सेवा करने वाले हम सभी सेवकों के लिए इब्रानियों 13:6 एक बहुत महत्वपूर्ण वचन है। वह कहता है: *"इसलिए हम साहस–पूर्वक कह सकते हैं, 'प्रभु मेरा सहायक है, मैं नहीं डरूँगा। मनुष्य मेरा क्या कर सकता है'?"*

फिर भी, हमें *सतर्क रहने* और *भयभीत होने* के बीच के फर्क़ को जानना होगा। हमें इस संसार में चतुर बन कर रहना है– साँप की तरह चतुर। लेकिन हमें किसी स्त्री या पुरुष या दुष्टात्मा या ख़ुद शैतान से भी भयभीत होने की ज़रूरत नहीं है।

यीशु सतर्क रहता था। जब उसने यह जाना कि यहूदिया में लोग उसे मार डालना चाह रहे हैं, तो वह वहाँ नहीं गया (यूहन्ना 7:1)। यह समझदारी थी। इसमें बुद्धिमानी थी। लेकिन यीशु कभी किसी से नहीं *डरा।*

अगर आपको रात में जंगल में जाना पड़े, तो आप अपने साथ एक टॉर्च–बत्ती ले जाएंगे। यह सतर्कता दर्शाना है, भयभीत होना नहीं। अगर किसी जगह में आपको लोग मार डालना चाह रहे हैं, तो आपको वहाँ नहीं जाना चाहिए– जब तक स्वयं परमेश्वर आपको वहाँ जाने के लिए न कहे। यीशु को जब पवित्र–आत्मा ले गया, तब वह अंततः यरूशलेम में गया– और उसे वहाँ मार डाला गया। लेकिन वह परमेश्वर की इच्छा में, और परमेश्वर के समय में हुआ था।

हम किसी मनुष्य का भय नहीं रखते। अगर हम परमेश्वर की इच्छा पूरी कर रहे हैं और 'परम्प्रधान की छाया में' वास करते हैं, (भजन. 91:1) तो

मनुष्य हमारा क्या बिगाड़ सकता है? बाइबल यह सवाल करती है, "तुम्हें हानि पहुँचाने वाला कौन है?" (1 पत. 3:13)। *जो कुछ भी* मनुष्य हमारे साथ करते हैं, परमेश्वर वह सब कुछ लेकर उससे *हमारे लिए भलाई* पैदा कर सकता है (रोमियों 8:30)। यह क्योंकि सच है, तो हम कभी भी क्यों डरें?

अगर हम इस बात पर विश्वास करेंगे, तो इससे हमारे जीवन में ज़बरदस्त अधिकार आ जाएगा। शैतान हमसे हमारा बहुत सा आत्मिक अधिकार ले लेता है क्योंकि हम मनुष्यों से डरते हैं, या उन्हें प्रसन्न या प्रभावित करना चाहते हैं, या उनके सामने अपने आपको सही साबित करना चाहते हैं। हमें इस तरह की मनोदशाओं से पूरी तरह छूट जाना चाहिए।

लेकिन यह आसान नहीं है। यह एक लगातार चलने वाला युद्ध है। जब एक बार आप किसी समूह में से किसी क-ख-ग को प्रसन्न न करने का फैसला कर लेंगे, तो आप शायद यह कल्पना करने लग सकते हैं कि अब मनुष्यों को प्रसन्न करने के मामले में से आप छूट गए हैं। लेकिन जल्दी ही आपको पता चलेगा कि आप *एक दूसरे समूह के* प-फ-ब को खुश करने में लग गए हैं! और यह निरंतर चलता रहता है! अगर हमें ***सभी*** मनुष्यों की गुलामी में से पूरी तरह छूटना है तो हमें यह युद्ध विश्वासयोग्य रहते हुए अंत तक लड़ना पड़ेगा। हमें हर समय पाप का बोध होना चाहिए और उससे लड़ना चाहिए। हमें कभी किसी मनुष्य के समर्थन की खोज में नहीं रहना चाहिए।

ऐसे बहुत से विश्वासी हैं जो घमण्ड से यह कहते हैं कि वे किसी के मत की कोई परवाह नहीं करते। लेकिन ऐसे लोग आत्मिक नहीं हैं। वे *अहंकारी* हैं। एक ईश्वरीय बड़े भाई का मत बहुत मूल्यवान हो सकता है। वह हमारी ऐसी बातें हमें बता सकता है जो हमें खुद नज़र नहीं आ सकतीं। ऐसे व्यक्ति का आदर करना और उसके अधिकार के अधीन होने से असल में हमारी बहुत मदद हो सकती है। असल में, यह सीखना ज़रूरी होता है कि हम एक ईश्वरीय व्यक्ति के गुलाम बने बिना उसके अधीन कैसे हो सकते हैं।

अगर हम यह चाहते हैं कि हमारी कलीसिया के सदस्य सिर्फ परमेश्वर का भय मानने वाले हों, और वे मनुष्यों और दुष्टात्माओं के भय से मुक्त हों तो पहले हमें ऐसा होना पड़ेगा।

परमेश्वर क्योंकि इस पृथ्वी पर सभी बातों पर नियंत्रण रखता है, इसलिए हम किसी व्यक्ति या किसी बात का भय नहीं मानते।

एक बार, जब मैं एक देश में प्रचार के लिए जाने की तैयारी कर रहा था (जहाँ सुसमाचार प्रचार करने पर प्रतिबंध है), तो प्रभु ने मुझे मत्ती 28: 18-19

याद दिलाया और मैंने यह देखा कि ***क्योंकि*** प्रभु के पास स्वर्ग और *पृथ्वी का* सारा अधिकार है, इसलिए उसने हमें हरेक जाति में जाकर शिष्य बनाने की आज्ञा दी है। अगर हम इस आधार पर नहीं जाते, तो हम जहाँ भी जाएंगे, हम समस्याओं का सामना करेंगे।

मत्ती 28 की महान् आज्ञा में 'इसलिए' सबसे ज़रूरी शब्द है। ज़्यादातर प्रचारक 'जाओ' शब्द पर ज़ोर देते हैं। यह अच्छा है। लेकिन हमें किस आधार पर जाना है? इसका आधार यह है कि हमारे प्रभु के पास इस पृथ्वी के सभी लोगों पर पूरा अधिकार है, और सारी दुष्टात्माएं भी उसके वश में हैं। अगर आप यह विश्वास नहीं करते, तो फिर अच्छा यही है कि आप कहीं *न* जाएं!

मत्ती 28 का यह पद उस दिन मेरे पास एक नए प्रकाशन के साथ आया। तब मुझे यह अहसास हुआ कि मैं उस देश में बिना किसी झिझक जा सकता हूँ। जब मैंने उस देश में प्रवेश किया तो यह स्वाभाविक ही था कि मुझमें भय था। लेकिन मैंने उस भय के आधार पर निर्णय नहीं लिया था।

अगर आप सोचते हैं कि इस *पृथ्वी पर ऐसा कोई देश* है जहाँ प्रभु यीशु का पूरा अधिकार ***नहीं*** है, तो मैं यही सलाह दूँगा कि आप वहाँ न जाएं! मैं खुद भी वहाँ नहीं जाऊँगा। लेकिन परमेश्वर का धन्यवाद हो कि पृथ्वी पर ऐसी कोई जगह ही नहीं है! इस पृथ्वी का हरेक कोना हमारे प्रभु के अधिकार में है।

इसी तरह, अगर आप यह सोचते हैं कि कहीं पर कोई ऐसा मनुष्य है (चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो) जिसके ऊपर हमारे प्रभु का अधिकार नहीं है, तो आप हमेशा उससे भयभीत रहेंगे। लेकिन परमेश्वर का धन्यवाद हो कि ऐसा कोई व्यक्ति कहीं नहीं है। राजा नबूकदनेस्सर को भी यह बात समझ आ गई थी, जैसा कि हम दानिय्येल 4:35 में पढ़ते हैं।

अगर कहीं कोई ऐसी दुष्टात्मा है जो कलवरी पर हमारे प्रभु द्वारा नहीं हराई गई, बल्कि वह वहाँ से किसी तरह हार से बच निकली है, तो हमें हमेशा उस दुष्टात्मा के भय में जीना पड़ेगा। लेकिन ऐसी एक भी दुष्टात्मा नहीं है जो सूली पर हराई नहीं गई है। शैतान खुद वहाँ हार गया है–स्थाई रूप में। यही वह बात है जो हमें हमेशा के लिए शैतान और उसकी दुष्टात्माओं से छुटकारा दिलाती है, और हमारी सेवकाई में बड़ा साहस लाती है।

इसलिए, परमेश्वर हमें जहाँ भी जाने के लिए बुलाता है, हम वहाँ जाते हैं। कुछ जगहों में ख़तरा हो सकता है। लेकिन अगर हमने यह जान लिया है और अगर हम ऐसा महसूस करते हैं कि प्रभु वहाँ हमारी अगुवाई कर रहा है, तो

फिर वहाँ जाने में हमें डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। इसमें सवाल यह नहीं है कि किसी ख़ास जगह में मसीहियों का सताव हो रहा है या नहीं। सवाल सिर्फ इतना है कि क्या प्रभु ने हमें वहाँ जाने के लिए कहा है या नहीं। अगर उसने कहा है, तो उसका अधिकार पूरी तरह हमारे पीछे काम करेगा। फिर हमें किसी बात से डरने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन अगर परमेश्वर ने हमें कहीं जाने के लिए *नहीं* कहा है, तो चाहे मनुष्य हमें जाने के लिए कितना भी मजबूर क्यों न करें, या रोमांच की आत्मा आकर चाहे हमारे भीतर हमें कितना भी प्रेरित क्यों न करे, हमें नहीं जाना चाहिए!

हमें अपने आपसे यह पूछना चाहिए कि हम किसी जगह क्यों जा रहे हैं। अगर हम वहाँ इसलिए जा रहे हैं क्योंकि हम वहाँ *शिष्य बनाना चाहते हैं*, और इसके अलावा हमारा दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है, तो हमें इस बात का निश्चय होना चाहिए कि प्रभु हमेशा हमारे साथ रहेगा– 'युग के अंत तक' – जैसा कि उसने वादा किया है। लेकिन हमारे दूसरे उद्देश्य भी हो सकते हैं। प्रभु हमारे "हृदय की भावनाओं को जाँचता है" (यिर्म. 12:3) और हमारे उद्देश्यों को परखता है।

प्रभु ऐसे हरेक व्यक्ति के साथ नहीं होगा जो अपने आपको विश्वासी कहता है। हम यूहन्ना 2:24 में यह पढ़ते हैं। लेकिन अगर आप प्रभु से ईमानदारी से यह कह सकते हैं कि "प्रभु, मैं उस जगह में सिर्फ इसलिए जा रहा हूँ क्योंकि मैं ऐसा महसूस कर रहा हूँ कि तू यह चाहता है कि मैं वहाँ जाऊँ। और मैं वहाँ सिर्फ शिष्य बनाने जा रहा हूँ, उन्हें पिता, पुत्र, पवित्र-आत्मा के नाम से बपतिस्मा देने जा रहा हूँ और जो-जो आज्ञाएं तूने दी हैं, वह सिखाने जा रहा हूँ। *मैं वहाँ धन कमाने, नाम कमाने, या किसी अन्य व्यक्तिगत कारण से नहीं जा रहा हूँ,*" तो निश्चय ही प्रभु का अधिकार हमेशा आपके पीछे रहेगा।

और फिर आपको यह सोचते हुए इस भय में नहीं जीना पड़ेगा कि आपकी पत्नी और बच्चों का क्या होगा और आपकी आर्थिक ज़रूरतें कैसे पूरी होंगी। सिर्फ एक ही सवाल ज़रूरी है कि "क्या परमेश्वर ने आपको बुलाया है या नहीं?" क्या परमेश्वर आपको वहाँ भेज रहा है या कोई मनुष्य भेज रहा है? या रोमांच की आत्मा आपको वहाँ ले जा रही है?

अगर परमेश्वर की योजना के अलावा आपकी दूसरी कोई योजना है, तो मैं आपको तसल्ली देने के लिए पवित्र-शास्त्र में से एक भी प्रतिज्ञा नहीं दे सकता। लेकिन अगर आपकी योजना वही योजना है जो परमेश्वर की योजना है– शिष्य बनाना, उन्हें पिता, पुत्र और पवित्र-आत्मा के नाम से बपतिस्मा देना,

और उन्हें वह सब कुछ सिखाना जिसकी आज्ञा यीशु ने दी है- तो मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि आपको न तो मनुष्यों से और न ही दुष्टात्माओं से डरने की ज़रूरत है।

परमेश्वर के हरेक सेवक को यह मालूम होना चाहिए कि दुष्टात्माग्रस्त लोगों को उनसे कैसे छुड़ाए- उस अधिकार का इस्तेमाल करने के द्वारा जो हमारे प्रभु यीशु मसीह के नाम में है। दुष्टात्माएं आपसे या मुझसे नहीं डरतीं। वे सिर्फ प्रभु से डरती हैं जिसने उन्हें सूली पर हराया है। इसलिए हमें स्पष्ट रूप में यह जान लेना ज़रूरी है कि यीशु मसीह ने सूली पर शैतान की सारी ताक़त को मिटा दिया है (कुल. 2:14,15)। यही वह सुसमाचारीय ख़ुश-ख़बरी है जिसका सबसे पहले हमें अनुभव होना चाहिए और फिर सब मनुष्यों के बीच हमें इसका प्रचार करना चाहिए। अगर हम इस पर विश्वास करेंगे, तो हम दूसरों को शैतान के अधिकार में से छुड़ा सकेंगे।

हमें इस बात से डरने की ज़रूरत नहीं है कि दुष्टात्माएं हमारे साथ क्या करने की कोशिश कर सकती हैं। परमेश्वर की मर्ज़ी के बिना वे हमारे सिर का एक बाल भी नहीं छू सकतीं। लेकिन भारत में बहुत से विश्वासी इस बात से डरते हैं कि कोई उन पर कोई तांत्रिक क्रिया कर देगा। उनमें ऐसे डर क्यों होता है? यह इसलिए है क्योंकि वे यह नहीं जानते कि शैतान सूली पर हराया जा चुका है।

मुझे याद है कि एक बार मैं एक ऐसे पास्टर से मिला जो काफी समय से बीमार था और जो अपनी बीमारी के लिए उसके शत्रुओं द्वारा उस पर किए गए जादू-टोन्हों को ज़िम्मेदार ठहरा रहा था। यह कैसे हो सकता है? क्या प्रभु काले जादू और तंत्र-मंत्र की शक्ति के सामने कमज़ोर है? नहीं। यह पास्टर का अविश्वास था जिसकी वजह से वह ऐसा महसूस कर रहा था। कोई शैतानी ताक़त प्रभु के अधिकार और उसकी सामर्थ्य के सामने नहीं टिक सकती - न तो इस पृथ्वी पर और न ही आकाश में, जहाँ से ये दुष्टात्माएं काम करती हैं (इफि. 6:12)। अगर आप यह विश्वास नहीं करते, तो मैं आपको यही सलाह दूँगा कि आप प्रभु की सेवा करना छोड़ कर कुछ और करना शुरू कर दें। आप प्रचार करना बंद कर दें क्योंकि आप अपने भय और अविश्वास दूसरे लोगों में सम्प्रेषित कर देंगे। भय शैतान का हथियार है। उसे यह कभी आपके ऊपर इस्तेमाल न करने दें।

ऐसा हो सकता है कि दुष्टात्माओं को परमेश्वर की अनुमतिगामक इच्छा में विश्वासियों को सताने की अनुमति दे दी जाए- जैसा अय्यूब के मामले में

हुआ था। परमेश्वर ने शैतान के एक दूत को प्रेरित पौलुस को भी सताने की अनुमति दे रखी थी (2 कुरि. 12:7)। वह पौलुस के लिए एक काँटे की तरह असुविधाजनक था। पौलुस जहाँ कहीं भी जाता था, वह उसे लगातार सताने वाली *कोई बीमारी या कोई व्यक्ति* हो सकता था। अगर हमारी देह में भी कोई काँटा चुभा है और हम उसे अपने आप नहीं निकाल सकते, तो उसे निकालने के लिए हमें प्रभु से कहना चाहिए। लेकिन ऐसा हो सकता है कि अगर वह हमें नम्र व दीन बनाने का बड़ा उद्देश्य पूरा कर रहा है, तो जैसा पौलुस से कहा गया था, परमेश्वर हमसे भी वही कह दे – "नहीं।" शैतान को एक बार यह अनुमति भी दी गई थी कि वह पौलुस को थिस्सलुनीके जाने से रोक दे। लेकिन तीमुथियुस वहाँ गया था और परमेश्वर का उद्देश्य फिर भी वहाँ पूरा हुआ था (1 थिस्स. 2:18; 3:2)।

फिर भी, मैं इस एक बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ, कि एक नया जन्म पाया हुआ मसीही ***कभी*** *दुष्टात्माग्रस्त नहीं हो सकता।* दुर्भाग्यवश, इन दिनों बहुत से प्रचारक ऐसे धर्मज्ञान का प्रचार कर रहे हैं जो पवित्र शास्त्र पर आधारित नहीं है, कि विश्वासी भी *"दुष्टात्माग्रस्त"* हो सकते हैं– और इस तरह, वे बहुत से विश्वासियों को भय और दोष के वश में कर रहे हैं।

ऐसे प्रचारक अपनी शिक्षा को सही ठहराने के लिए पवित्र–शास्त्र का एक वचन भी नहीं बता सकते। लेकिन वे यह कहते हैं कि उन्होंने अपने अनुभवों में ऐसे मामले देखे हैं। इस तरह, वे अपने *अनुभव* को परमेश्वर के वचन से ऊँचा उठाते हैं। इससे ही यह साबित होता है कि वे ग़लत हैं।

मसीह और एक दुष्टात्मा एक ही हृदय में एक–साथ नहीं रह सकते। अंधकार और ज्योति का एक साथ वास नहीं हो सकता। यह सच है कि जिन आराधनालयों में यीशु ने प्रचार किया था उनमें कुछ यहूदी दुष्टात्माग्रस्त थे। लेकिन, प्रेरितों के काम अध्याय 2 के बाद, हम यह देखते हैं कि एक भी नया जन्म पाया हुआ विश्वासी दुष्टात्माग्रस्त नहीं हुआ।

एक मसीही को दुष्टात्माएं बाहर से आकर सता सकती हैं, जैसा कि पौलुस और अय्यूब के मामले में था– लेकिन वह भी सिर्फ परमेश्वर की मर्ज़ी से ही हो सकता है। और अगर परमेश्वर ऐसे सताव की अनुमति देता है, तो आप निश्चित तौर पर जान सकते हैं कि वह आपकी आत्मिक उन्नति के लिए ही काम करेगा।

जब भी आपको यह शंका हो कि एक व्यक्ति दुष्टात्माग्रस्त है या नहीं, तो उससे यह कहें कि वह अपने पूरे हृदय से इन तीन बातों का अंगीकार करे:

1. *यीशु मसीह मेरा प्रभु है।*
2. *यीशु मसीह देह-धारी हुआ और उसने पाप पर जय पाई।*
3. *शैतान, तू सूली पर प्रभु यीशु मसीह द्वारा हराया गया है। अब तेरा मुझ पर कोई अधिकार नहीं है।*

दुष्टात्माग्रस्त लोग अपनी आत्मा में से इन तीन बातों का अंगीकार नहीं कर सकेंगे।

हम जब भी बीमार हों, हमें चंगाई के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। लेकिन हमें प्रभु से यह भी कह देना चाहिए कि अगर उस बीमारी के द्वारा वह हमारी आत्मिक उन्नति और अपने नाम की महिमा चाहता है, तो हम उस बीमारी को सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।

पुरानी वाचा में परमेश्वर ने ऐसे हरेक व्यक्ति से एक लम्बे व स्वस्थ जीवन की प्रतिज्ञा की जो अपने माता-पिता का आदर करता है। इसमें क्या बात शामिल है? यही कि जब ये बच्चे बड़े हो रहे होंगे, तो उन पर किसी गंभीर दुर्घटना या बीमारी का हमला नहीं होगा। क्या परमेश्वर ने उन बच्चों की ख़ास निगरानी की है जिन्होंने अपने माता-पिता का आदर किया है? हाँ, यह एक ऐसी असली और अर्थपूर्ण प्रतिज्ञा है जिसे परमेश्वर ने पूरा किया है। परमेश्वर हालातों को अपने वश में रखता है कि अपने माता-पिता का आदर करने वाला बच्चा इस पृथ्वी पर एक लम्बा और स्वस्थ जीवन जी सके।

इसी तरह, परमेश्वर हमारे जीवन के हालातों को भी अपने वश में रख सकता है, कि जब तक हम परमेश्वर की इच्छा को पूरा नहीं कर देते - चाहे वह तैंतीस वर्ष की उम्र में हो या नब्बे वर्ष की उम्र में हो।

नई वाचा में, हम जानते हैं कि लम्बी आयु कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, बल्कि ऐसा जीवन बड़ी बात है जो *परमेश्वर की इच्छा पूरी करने में बिताया गया है*, फिर चाहे वह छोटा हो या लम्बा। यीशु स्वयं 33 वर्ष की उम्र तक ही पृथ्वी पर रहा, लेकिन इसमें उसने वह काम पूरा कर दिया जो उसे पिता ने करने के लिए दिया था। डेविड ब्रेनर्ड 29 वर्ष तक जीवित रहा और वॉचमैन नी 70 वर्ष तक जीवित रहा लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है (जहाँ तक हमें मालूम है), कि दोनों ने ही पृथ्वी से जाने से पहले, परमेश्वर द्वारा उन्हें दिया गया काम पूरा कर दिया था। और परमेश्वर ने सर्वशक्तिशाली रूप में दोनों के ही जीवनों की परिस्थितियों को इस तरह अपने वश में रखा कि जब तक पृथ्वी पर उनका काम पूरा नहीं हो गया, किसी बीमारी या दुर्घटना ने उनके जीवन की अवधि को कम नहीं किया।

इस पृथ्वी पर बहुत से कीटाणु और जीवाणु हैं जो हमारी देह पर हमला करते हैं। उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो हमें मार डालने की भी क्षमता रखते हैं! लेकिन परमेश्वर इतना शक्तिशाली है कि वह उन कीटाणुओं और जीवाणुओं को अपने वश में रखता है कि वे हम पर हमला नहीं करते और हमें *मार नहीं डालते।*

वह हर पल हम पर नज़र रखता है और न कभी ऊँघता है न सोता है। अगर हमारा यह विश्वास है, तो हम परिस्थितियों के भय से, बीमारियों के भय से, दुर्घटना के भय से, और हर प्रकार के भय से मुक्त रहेंगे।

अगर आप परमेश्वर का भय मानेंगे, तो आपको बाक़ी किसी बात से भयभीत न होना पड़ेगा।

अध्याय 12

दूसरों को भय से मुक्त करने वाला

एक आत्मिक अगुवा लोगों को अपने अधीन करने के लिए कभी भी भय को एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल नहीं करेगा। इसके विपरीत, वह लोगों को भय से मुक्त करेगा।

भय सिर्फ शैतान के ही शस्त्रागार में पाया जाने वाला हथियार है। यीशु मनुष्य को भय से छुटकारा दिलाने के लिए आया। हरेक आत्मिक अगुवे का भी यही काम है।

इब्रानियों 2:14-15 कहता है कि यीशु *"माँस और लहू में सहभागी हुआ कि उन्हें छुड़ा ले जो मृत्यु के **भय** से जीवन भर **दासत्व** में पड़े थे।"*

रोमियों 8:15 हमें बताता है, "तुमने दासत्व का आत्मा नहीं पाया कि फिर भयभीत हो, बल्कि पुत्रों के समान लेपालकपन का आत्मा पाया है।"

यहाँ पौलुस हमें परमेश्वर के पुत्र बनाने वाले पवित्र-आत्मा की तुलना दासत्व की आत्मा से करता है जो हमें भयभीत करती है। भय हमेशा दासत्व लाता है। पूरे संसार में लोग भय में जीते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि विश्वासी भी भय में जीते हैं।

अगर एक व्यक्ति आपको पर्याप्त मात्रा में डरा लेगा, तो आप उसके गुलाम बन जाएंगे। सभी झूठे *धार्मिक-पंथों* में यही सिद्धान्त काम करता है। मज़बूत जैविक-शक्ति वाले लोग दूसरे लोगों पर भय का हथियार इस्तेमाल करते हैं, और उन्हें इस बात से भयभीत करते हैं कि अगर उन्होंने कभी उनकी मण्डली को छोड़ा, तो उनके या उनके परिवारों पर भयानक मुसीबतें आ पड़ेंगी। यह एकदम मूर्खता की बात है। लेकिन जब लोग ऐसी धमकियों को बार-बार सुनते हैं, तो वे उन पर यक़ीन करने लगते हैं, और उस *धार्मिक-पंथ*

को छोड़ने से डरते हैं। अगर उन्हें उस समुदाय में सब कुछ ग़लत भी लगता है, तब भी वे डर की वजह से उसे वहीं बने रहेंगे। यह भी हो सकता है कि उसका अगुवा व्यभिचार में जीवन बिता रहा हो। लेकिन उस पंथ के सदस्यों में डर की वजह से उसके ख़िलाफ बोलने का साहस नहीं होगा। ऐसा भय उन्हें गुलामी में पहुँचाता है।

जब भी एक मसीही अगुवा भय के हथियार का इस्तेमाल करते हुए विश्वासियों को अपने अधिकार के अधीन करता है, या उनसे दसवांश लेता है, या और कुछ भी कराता है, तो वह शैतान का हथियार इस्तेमाल कर रहा है।

हम जो कुछ लोगों से कराना चाहते हैं, वह कराने के लिए हमें कभी भी "भय" का हथियार इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। अगर कोई यह हथियार इस्तेमाल करता है, तो वह जो भी मण्डली खड़ी करेगा, वह एक *झूठा धार्मिक पंथ* ही होगा।

परमेश्वर की सच्ची कलीसिया में, हरेक भाई और बहन को उसके फैसले लेने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। अगर कलीसिया में लोग पाप में जीवन व्यतीत कर रहे हों, तो हमें अवश्य ही उन्हें अनुशासित करने की ज़रूरत होती है। लेकिन उन्हें श्राप और दण्ड से भयभीत नहीं करना चाहिए।

ऐसे पास्टर हैं जो अपनी कलीसियाओं को यह बताते हैं कि अगर वे कलीसिया में अपने दसवांश नहीं देंगे, तो उन्हें वह पैसा अस्पतालों में डॉक्टरों के बिल भरने में ख़र्च करना पड़ेगा। यह एकदम मूर्खतापूर्ण बात है। हमारी बुलाहट लोगों को ऐसे डरों में से छुटकारा दिलाने के लिए है। यह ज़रूरी है कि लोग अपना पैसा किसी सज़ा या दण्डाज्ञा की धमकी से नहीं, बल्कि खुशी और आनन्द से दें। परमेश्वर ऐसा कोई धन नहीं चाहता जो इस तरह से निकाला जाता है। और वे पास्टर जो लोगों से इस तरह पैसा निकलवाते हैं, देर-सवेर परमेश्वर के न्याय तले ज़रूर आएंगे।

पुरानी वाचा में, लोग भयभीत होकर परमेश्वर की सेवा करते थे। व्यवस्था विवरण के अध्याय 28 में, इस्राएलियों को यह चेतावनी दी गई कि अगर उन्होंने परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन नहीं किया तो उन्हें ग़रीबी, बीमारी, पागलपन और दूसरी बुराइयों से दण्डित किया जाएगा। इसलिए वे परमेश्वर की आज्ञा का पालन करते थे- भयभीत होकर। मलाकी ने इस्राएलियों से कहा कि अगर उन्होंने अपने दसवांश नहीं दिए तो वे श्रापित होंगे (मलाकी 3:10)। लेकिन वह सब व्यवस्था में था।

यीशु इसलिए आया कि हमें ऐसी सब *विधिवादी* आज्ञापालन से छुटकारा दिलाए। ज़करियाह, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के पिता ने यह नबूवत कि नई वाचा के युग में अब हम "निर्भयता से परमेश्वर की सेवा करें" (लूका 1:74), सच्चे आदरयुक्त भय में।

क्या आपके जीवन में ऐसा कुछ है जो आप भयभीत होकर करते हैं? क्या आप हर सुबह बाइबल इसलिए पढ़ते हैं क्योंकि आपको यह डर है कि उसे न पढ़ने से आपके ऊपर कोई मुसीबत आ पड़ेगी? यह स्पष्ट और सहज रूप में *अंध-विश्वास* है! और परमेश्वर हर्गिज़ यह ***नहीं*** चाहता कि आप ऐसे अंध-विश्वास के साथ बाइबल पढ़ें! वह चाहता है कि आपके लिए उसके तीव्र प्रेम को आप जानें और आप हर तरह के डर से मुक्त हों। जिस वजह से परमेश्वर ने हमें यीशु मसीह के लहू से धोया है-और हमें सही भी ठहराया है- वह यही है कि शैतान हमें फिर कभी दोषी न ठहरा सके।

कोई भी सेवकाई जो परमेश्वर के लोगों को दोषी ठहराती है, वह कभी *परमेश्वर की ओर से नहीं हो सकती*। प्रभु लोगों को मुक्त करने के लिए आया है, और ज़्यादा गुलामी के बंधनों में जकड़ने के लिए नहीं।

ज़्यादातर विश्वासी पहले ही अपनी बहुत सी समस्याओं से पीड़ित हैं। यह अच्छा नहीं है कि जब वे कलीसियाई सभाओं में आएं तो हम उन्हें और दोषी ठहरा कर उनकी समस्याओं को बढ़ाएं। वे छुटकारा और मदद पाने के लिए आते हैं- इसलिए नहीं कि उन्हें ताड़ना देकर और दोषी ठहराकर वापिस भेजा जाए।

प्रभु आनन्द की ललकार के साथ अपने लोगों के लिए ख़ुशी मनाता है- और यही बात हमें परमेश्वर के लोगों को बतानी है।

कलीसियाई सभाओं में प्रभु की स्तुति करने का पूरा उद्देश्य यही है कि हम अपने लिए उसके प्रेम का उत्सव मनाएं, और इस वास्तविकता में आनन्दित हों कि वह हममें उल्लासित होता है और हमसे ख़ुश रहता है। परमेश्वर ने हमें क्षमा किया, इसलिए नहीं कि हम अच्छे हैं, बल्कि इसलिए क्योंकि उसने हमसे प्रेम किया है। उसने हमें मसीह में तब चुना जब हममें कुछ भी अच्छा नहीं था। अब जबकि हमने मन फिरा लिया है, तो वह हमसे और कितना ज़्यादा प्रेम करेगा?

फिर भी शैतान, उसके अपने बच्चों से ज़्यादा परमेश्वर के बच्चों में दोष की मनोदशा उत्पन्न करने में सफल रहा है। असल में, हमें नहीं बल्कि शैतान के बच्चों को दोषी महसूस करना चाहिए। लेकिन वे एक भ्रम के संसार में जीते

हैं और खुश रहते हैं। लेकिन परमेश्वर के ज़्यादातर बच्चे, जिन्हें जगत में सबसे खुश लोग होना चाहिए, दोष और अयोग्यता की भावनाओं तले जीते हैं। यह नम्रता नहीं *अविश्वास* है!

बहुत से विश्वासी पवित्र-आत्मा से भरे होने का दावा करते हैं, फिर भी भय के गुलाम होते हैं। यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति पवित्र-आत्मा से भरा हो और फिर भी भय का गुलाम हो? कोई झूठा नबी आता है और उनसे कहता है कि उन पर कोई मुसीबत आने वाली है, और वे फौरन डर से भर जाते हैं। वह झूठा नबी फिर उन पर "परमेश्वर की सुरक्षा" की प्रार्थना करने के लिए उनसे पैसे बटोरता है, और फिर किसी दूसरे परिवार को भरमाने के लिए आगे बढ़ जाता है। हमें ऐसे झूठे नबियों से सचेत रहने की ज़रूरत है। जगत में ऐसे बहुत से झूठे नबी घूम रहे हैं जो लोगों के मनों को भयभीत कर रहे हैं।

हमारे ख़िलाफ दस हज़ार झूठे नबी दुष्टता की बातों की नबूवत कर सकते है; लेकिन कोई दुष्टता हमें नहीं छू सकती। वह वापिस उन्हीं के सिर पर लौट जाएगी। हमें अपनी मण्डलियों को यह सत्य सिखाने और उन्हें साहसी बनाने की ज़रूरत है। अगर हममें किसी भी तरह का डर होगा, तो हमें न तो परमेश्वर के सामने भरोसा, और न ही शैतान के सामने साहस होगा। अगर हम परमेश्वर का भय मानेंगे, तो हमें किसी और से भयभीत रहने की ज़रूरत नहीं होगी।

भय शैतान का हथियार है। *जो भी अपनी सेवकाई में भय का इस्तेमाल कर रहा है, वह शैतान के साथ संगति कर रहा है।*

यीशु ने लोगों को नर्क के बारे में चेतावनी दी, लेकिन उसने उन्हें कभी भी उस जगह की डरावनी कहानियाँ सुनाकर या घिनौनी बातें बताकर डराया नहीं था! और उसके जो शिष्य उसे छोड़ कर चले गए थे, उसने उन्हें यह कहकर धमकी नहीं दी कि उन्हें इसके बुरे नतीजे भुगतने पड़ेंगे।

बाइबल यह आज्ञा देती है कि स्वामियों को अपने सेवकों को धमकाना नहीं है (इफि. 6:9)।

अगर भय शैतान का हथियार है, तो परमेश्वर के सेवक होते हुए हम उसे कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं? फिर भी, बहुत से मसीही अगुवे अपने झुण्ड को वश में रखने के लिए भय का इस्तेमाल करते हैं।

अगर लोग हमारी बुराई करें, तो भी हमें उन पर दोष नहीं लगाना चाहिए और न ही उन्हें परमेश्वर के क्रोध की धमकी देनी चाहिए। फरीसियों ने यीशु

को दुष्टात्माओं का सरदार बालज़बूल कहाँ लेकिन यीशु ने उन्हें धमकी नहीं दी, बल्कि उन्हें क्षमा किया (मत्ती 12:32)। हम भी उसके उदाहरण का अनुसरण करें।

जब हम लोगों से बात करते हैं, तो हम अपने शब्दों के साथ एक *आत्मा* भी छोड़ते हैं। हो सकता है हमें इसके बारे में कुछ मालूम न हो, लेकिन वह आत्मा मौजूद है। अगर हमारे मुँह में से दुर्गन्ध आती है, तो जब भी हम अपना मुँह खोलते हैं, दूसरे उसके बारे में जान जाते हैं, लेकिन हम ही नहीं जान पाते! और हमारी आत्माओं में से आने वाली गंध के मामले में भी बिलकुल यही होता है!

हम पवित्रता पर प्रचार कर सकते हैं, *लेकिन यह हो सकता है कि हममें से आने वाली आत्मा पवित्र न हो*।

हम नम्रता पर बोल सकते हैं, लेकिन हो सकता है कि हममें से आने वाली आत्मा नम्र न हो! ऐसा हो सकता है कि दो भाई नम्रता पर एक ही संदेश का प्रचार करें। और इनमें से एक के अन्दर नम्र आत्मा हो, और उसके अन्दर से वही उसके श्रोताओं में सम्प्रेषित होगी। और दूसरे में एक घमण्डी आत्मा हो, तो हालांकि दोनों ने एक ही संदेश का प्रचार किया है, फिर भी उसके श्रोताओं में उसकी घमण्डी आत्मा ही पहुँचेगी! इन दोनों प्रचारकों में बहुत बड़ा फर्क़ है, और यह ज़रूरी है कि हम इस फर्क़ को परखें।

इसी तरह, अगर हममें भय है, तो हम एक *भय की आत्मा* भी दूसरों में सम्प्रेषित कर सकते हैं। और जिस तरह से हम परमेश्वर के वचन का प्रचार करते हैं, उससे हम लोगों को दोषी भी ठहरा सकते हैं। हम निष्ठावान हो सकते हैं, लेकिन हममें से आने वाली आत्मा लोगों को गुलामी में पहुँचा सकती है। हमारे संदेश का प्रभावी होना सिर्फ हमारी अपनी समझ में से आने वाले ज्ञान पर नहीं बल्कि हमारे अन्दर से आने वाली आत्मा पर निर्भर होता है। हम दूसरों को एक संदेश ही नहीं दे रहे हैं, बल्कि उन्हें एक *जीवन* दे रहे हैं।

अगर आप किसी भी प्रकार के भय के गुलाम हैं, तो आपके अन्दर से आने वाली आत्मा, उन्हें भी दूषित करेगी जिनसे आप बात कर रहे हैं, और वे भी भय की आत्मा के बंधन में जकड़े जाएंगे। यह ऐसा ही है जैसा मानवीय देह में होता है। अगर आपकी देह में लहू की धाराओं में कोई बीमारी का कीटाणु है, तो आप उसे अपने बच्चों में स्थानान्तरित कर देंगे।

इसलिए यह ज़रूरी है कि हम अपने जीवन में से हरेक प्रकार के भय को दूर कर दें - मनुष्यों का भय, शैतान का भय, बीमारी का भय, बुरे हालातों का

भय, सड़क दुर्घटनाओं का भय, ग़रीबी का भय (हमारे जैसे ग़रीब देश में यह भय बहुत ठोस रूप में हो सकता है), यह भय कि हमारे बच्चों को अच्छी शिक्षा या अच्छी नौकरी नहीं मिलेगी, और इस तरह के बहुत से भय।

सिर्फ एक ही बात है जो इस सारे भय को दूर कर सकता है और वह है परमेश्वर का भय और हमारा उसमें भरोसा। अगर हम परमेश्वर का भय मानेंगे, तो हममें किसी बात का या किसी मनुष्य या भय नहीं होगा।

अगर हम परमेश्वर में भरोसा करते हैं, तो हम जानते हैं कि वह उन्हें प्रतिफल देता है जो उसे यत्न से ढूंढते हैं, और वह उन सबका आदर करता है जो उसका आदर करते हैं। जब हमारे हृदय में विश्वास होता है, तो हममें चाहे कभी-कभी डर के *क्षण* भी क्यों न आते हों, फिर भी उसमें भय नहीं रह *सकता*।

मुख्य सवाल यह है कि हमारी सोच-समझ पर किसका *अधिकार* है: *क्या वह विश्वास है, या भय है?*

हमें अपने आपसे यह भी पूछना चाहिए कि क्या हम भय को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हुए, दूसरों को *अपने अधिकार में करने की कोशिश करते हैं?*

अध्याय 13

अपने आपको नम्र व दीन करने वाला

एक आत्मिक अगुवा हमेशा अपने आपको नम्र व दीन करने के लिए तैयार रहेगा।

परमेश्वर घमण्डी का विरोध करता है लेकिन दीन पर कृपा करता है। अगर हम परमेश्वर के सामर्थी हाथ के नीचे स्वयं को दीन करेंगे, तो वह उचित समय पर हमें उन्नत करेगा (1 पतरस 5:5,6)।

उन्नत होने का अर्थ यह नहीं है कि हम इस संसार में महान् व्यक्ति बन जाते हैं या हम मसीही जगत में मनुष्यों से आदर पाते हैं। यह *आत्मिक* रूप में उन्नत होने की बात है जिसमें हमारे जीवन में परमेश्वर की इच्छा और सेवा पूरी करने के लिए हमें आत्मिक अधिकार दिया जाता है। लेकिन इस तरह से उन्नत होना हमारे नम्र व दीन होने पर निर्भर होगा।

हम जानते हैं कि यह जगत ऐसे लोगों से भरा पड़ा है जो अपने आपको दूसरों की नज़रों में ऊँचा और ऊँचा उठाना चाहते हैं। हरेक राजनेता और व्यापारी अपने आपको ऊँचा उठाना चाहता है। दुर्भाग्यवश, जो अपने आपको मसीह के सेवक कहते हैं, वे भी अपने आपको ऊँचा और ऊँचा उठाना चाहते हैं। वे अपने नाम के आगे 'रैव्ह॰ डॉक्टर' जैसी भव्य उपाधियाँ, और अपनी संस्थाओं में 'चेयरमैन' जैसी पदवियाँ चाहते हैं। यह अफसोस की बात है कि आज मसीही जगत और संसार के किसी व्यापारिक संगठन में कोई फर्क़ नहीं है!

युवा विश्वासी अपने अगुवों को फिल्मी सितारों की तरह सार्वजनिक सभाओं में बड़े-बड़े मंचों पर प्रकाश-पुञ्जों के बीच खड़े हुए, महँगे होटलों और घरों में रहते हुए, और महँगी कारों में घूमते हुए देखते हैं। परमेश्वर के मार्गों के बारे में ज़्यादा कुछ न जानते हुए, वे ऐसे अगुवों के प्रशंसक बन जाते

हैं और उस दिन की बाट जोहने लगते हैं जब वे भी उन्हीं की तरह उन ऊँचाइयों पर पहुँच पाएंगे! वे सोचते हैं कि इस तरह से आशिषित होने के लिए ये प्रचारक बहुत वर्षों तक परमेश्वर के प्रति बहुत विश्वासयोग्य रहे होंगे! और वे यह कल्पना करने लगते हैं कि वे भी विश्वासयोग्य रहने के द्वारा एक दिन ऐसे ही मंचों पर खड़े होंगे जिसमें वे भी प्रकाश-पुञ्जों के बीच में होंगे!

जब युवा लोग प्रचारकों को उपहार के रूप में अमेरिका और खाड़ी देशों में से बहुत सा धन कमाते हुए देखते हैं, तो वे उस दिन का इंतज़ार करने लगते हैं जब वे भी उनकी तरह धनवान हो सकेंगे। इन युवाओं का आदर्श यीशु मसीह नहीं बल्कि ये धनवान फिल्मी-सितारों जैसे प्रचारक हैं। आज मसीही जगत की यह एक दु:खद घटना है।

अपने युवाओं के सामने हमें अपने जीवन प्रदर्शित करने हैं और अपने शब्दों के द्वारा उन्हें यह सिखाना है कि अगर हम यीशु के पीछे चलते हैं तो हम धनवान या प्रसिद्ध नहीं लेकिन *ईश्वरीय* बनते हैं। और इसके साथ ही हमें ग़लत समझा जाएगा, अपमानित किया जाएगा, और सताया जाएगा! लेकिन हम उन्हें प्रेम कर सकेंगे जो हमसे घृणा करते हैं, और उन्हें आशिष दे सकेंगे जो हमें श्राप देते हैं। अगली पीढ़ी के सामने हमें यह दिखाने की ज़रूरत है। अगर हम यह नहीं करेंगे, तो वे 'किसी अन्य यीशु' के पीछे चल देंगे जो आज वे इन शारीरिक प्रचारकों में देखते हैं।

अपने आपको परमेश्वर के सामर्थी हाथ के नीचे दीन करने का अर्थ यही है कि परमेश्वर हमारे जीवन में चाहे जैसे भी हालात तैयार होने दे, हम *आनन्द-पूर्वक* उन्हें स्वीकार कर लें। हम उन हालातों को हमें नम्र व दीन करने देते हैं, कि हम 'छोटे' होते जाएं और वह 'बड़ा' होता जाए। जब हम लोगों की नज़र में छोटे होते जाते हैं तो वे हम पर निर्भर होकर नहीं जीते बल्कि प्रभु पर निर्भर हो जाते हैं।

प्रभु का सेवक होते हुए, मैं अपने *आलोचकों* से ज़्यादा उन लोगों से सचेत रहता हूँ जो मेरा *बहुत आदर करते* हैं। मैंने देखा है कि कुछ लोग मेरा इतना आदर करते हैं कि वे मुझसे उनके लिए परमेश्वर की इच्छा पता लगाने की अपेक्षा करने लगते हैं। "नहीं।" यही मेरा उनके लिए जवाब होता है। मैं उन्हें बताता हूँ कि ऐसा पुरानी वाचा में होता था कि लोग उनके स्वयं के बारे में परमेश्वर की इच्छा जानने के लिए नबियों के पास जाते थे। नई वाचा में, परमेश्वर की हरेक संतान (सबसे छोटे भी) परमेश्वर के पास सीधे जा सकते हैं और खुद उसकी इच्छा जान सकते हैं। *इब्रानियों 8:11* में यह हमें नई वाचा

में मिले एक विशेषाधिकार के रूप में ख़ास तौर पर दर्ज किया गया है। अब हम सब पवित्र-आत्मा पा सकते हैं और वही हमारा मार्गदर्शक है। इसलिए मैं अपने भाइयों से कहता हूँ कि मैं उन्हें *सलाह* दे सकता हूँ लेकिन मैं उनके लिए परमेश्वर की इच्छा का *पता नहीं लगा सकता*। मैंने अपनी सेवकाई के आरम्भ से ही इस बात पर ज़ोर दिया है। इसका परिणाम यह है कि आज हमारी कलीसियाओं में लोग मुझ पर निर्भर नहीं हैं बल्कि वे स्वयं प्रभु को जानते हैं। वे सीधे अपने सिर मसीह से जुड़े हुए हैं। इस तरह हमारे बीच में मसीह की देह अनेक वर्षों से तैयार हो रही है।

मसीह की देह तैयार करने का यह पहला सिद्धान्त है: *जितना जल्दी हो सके, हमें लोगों को सिर से जोड़ कर अपने से अलग कर देना चाहिए।*

हमें अपने आपको दीन करने और इस क्षेत्र में निष्फल होने लिए गंभीर होकर मन फिराने की ज़रूरत है। हममें यह लालसा होनी चाहिए कि हममें मसीह *बढ़े* और हम *घटें*। परमेश्वर हमें घटान के लिए बहुत से हालातों में से गुज़ारता है कि फिर मसीह हम में बढ़ सके। अगर उन हालातों में हम अपने आपको नम्र व दीन करेंगे तो परमेश्वर का ठहराया हुआ उद्देश्य हममें पूरा होगा।

अपने आपको नम्र व दीन करने का अर्थ है उन सबसे क्षमा माँगना जिनके साथ हमने ग़लत किया है। प्रभु के सेवक होते हुए, हमें सब लोगों के सेवक होना है और उनके सामने झुकने के लिए तैयार रहना है कि फिर हम उन्हें *आशिष दे सकें*। जब हम ग़लती करें, तो उसे स्वीकार कर लेने में हमें देर नहीं करनी चाहिए और जहाँ ज़रूरी हो वहाँ क्षमा माँग लेनी चाहिए। सिर्फ एक परमेश्वर ही है जो कभी कोई ग़लती नहीं करता।

मैंने प्रभु से कहा है कि मैं सूर्य के नीचे हरेक व्यक्ति से क्षमा माँगने के लिए तैयार हूँ- बच्चों, सेवकों, भिखारियों, सब से - और यह कि इस मामले में अपने सम्मान और प्रतिष्ठा को बीच में नहीं लाऊँगा। और मैंने ऐसा किया है- और परमेश्वर ने मुझे आशिष दी है।

अपने झुण्ड के सामने कभी एक झूठे सम्मान और प्रतिष्ठा में न खड़े हों। अगर आपने कुछ ग़लत किया है, तो उनसे क्षमा माँग लें और उनसे कह दें कि आप ग़लत थे और जो आपने किया है उसके लिए आप शर्मिन्दा हैं। इससे उनकी नज़र में आपका आदर और सम्मान घटेगा नहीं बल्कि बढ़ेगा। आपको यह दिखावा करने की क्या ज़रूरत है कि आप कभी कोई ग़लती ही नहीं करते?

मैंने एक बार कॉलेज के एक ऐसे छात्र के बारे में सुना जिसने अपने प्राध्यापक से एक बहुत मुश्किल सवाल पूछ लिया। प्राध्यापक ने कहा कि वह

उसका जवाब तीन शब्दों में दे सकता है: "मैं नहीं जानता"! उस छात्र की नज़र में उस दिन से अपने प्राध्यापक का सम्मान कई गुना बढ़ गया, न सिर्फ इसलिए क्योंकि उस दिन उसने प्राध्यापक की नम्रता को देखा, बल्कि इसलिए भी क्योंकि उसने उसकी ईमानदारी को भी देखा, जिसमें उसने ऐसी बात नहीं सिखाई जो वह नहीं जानता था।

मैंने अपनी कलीसिया में सबके बीच में यह कहा है कि मैं अपने जीवन के अंत तक ग़लतियाँ करता रहूँगा क्योंकि मैं परमेश्वर नहीं हूँ। जब तक मैं इस पृथ्वी पर हूँ, तब तक मैं ग़लती करता रहूँगा। लेकिन मेरी यह आशा है कि वे ग़लतियाँ ऐसी मूर्खता-भरी नहीं होंगी जैसी मैंने दस-बारह साल पहले की होंगी क्योंकि मैंने अपनी उन ग़लतियों से कुछ पाठ सीख लिए हैं। मैंने अपनी बड़ी भूलों में से कुछ बुद्धि पाई है। लेकिन मैं अब भी सिद्ध नहीं हूँ।

यहाँ हममें से बहुत से ऐसे लोग हैं जो विवाहित हैं। आप सभी जानते हैं कि आप कितनी आसानी से अनजाने में ही अपनी पत्नियों को चोट पहुँचा देते हैं। यह हो सकता है कि आपने एक अच्छे इरादे से कुछ कहा हो, लेकिन आपकी पत्नी ने उसे ग़लत समझा हो। इस बात का उलट भी हो सकता है- जब आपने अपनी पत्नी की बात में से कुछ ग़लत समझा हो। ऐसे मामलों में आपको क्या करना चाहिए? मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा: *आपके घर में एक* ***क्षमा-याचना*** *द्वारा जितनी जल्दी शांति बहाल हो सकती उतनी आपके इरादे के बारे में सफाई देने या यह जाँच-परख करने से नहीं हो सकती कि ग़लती किसने की थी!*

मान लें कि आप एक ऐसी परिस्थिति में फँसे हैं जिसमें आपके साथी आपको ग़लत समझ लेते हैं। उन्हें सफाई देने से कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि वे आपकी बात सुनने को तैयार नहीं होंगे। ऐसे मामले में, जबकि आप पूरी तरह निर्दोष हैं, आपको क्या करना चाहिए? क्या आपको अपनी ही नज़र में दया का पात्र बन जाना चाहिए? हर्गिज़ नहीं। बस इतना सुनिश्चित करें कि परमेश्वर के सामने और मनुष्यों के सामने आपका विवेक शुद्ध है और फिर सब परमेश्वर को सौंप दें। आपको सिर्फ इतना ही करना है। मैंने बहुत वर्षों तक यही किया है और मुझे बहुत आशिष मिली है। ऐसा ही करने की सलाह मैं आपको भी दूँगा।

जो भी प्रभु की सेवा करता है, वह शैतान के हमलों का निशाना होगा। हम परमेश्वर के लिए जितना ज़्यादा उपयोगी होंगे, उतना ही शत्रु हम पर हमला करेगा। हम इससे बच नहीं सकते। शैतान बदनामी करने, झूठे आरोप लगाने,

और मन-गढ़न्त कहानियाँ बनाने के द्वारा हम पर हमला करेगा। और वह हमारी पत्नियों और बच्चों पर भी हमला करेगा।

ज़रा उन बुराई से भरी बातों के बारे में सोचें जो यीशु के जीवनकाल में लोगों ने उसके बारे में बोलीं और *आज भी* बोलते हैं। उन्होंने उसे पेटू और पियक्कड़ (लूका 7:34), पागल (मरकुस 3:21), दुष्टात्माग्रस्त (यूहन्ना 8:48), दुष्टात्माओं का सरदार (मत्ती 12:24) और ऐसी बहुत सी बातें कहीं। उन्होंने उसे झूठा शिक्षक कहा जो मूसा और पवित्र शास्त्र से विरोधी धर्मज्ञान सिखा रहा था (यूहन्ना 9:29)। इस तरह, उन्होंने लोगों को उसकी बात सुनने से दूर कर दिया था। लेकिन उसने ऐसे लोगों को जवाब देना भी उचित नहीं समझा था। उसने एक भी ***व्यक्तिगत*** *आरोप* का जवाब नहीं दिया। हमें भी नहीं देना चाहिए। यीशु ने सिर्फ *धर्म-ज्ञान सम्बंधी* सवालों के ही जवाब दिए। आज लोग हमारे प्रभु के बारे में अनैतिक बातें भी करते हैं। लेकिन परमेश्वर उनका न्याय करने के लिए उन पर टूट नहीं पड़ रहा है।

उन्होंने पौलुस को एक धोखेबाज़ और एक झूठा नबी कहा जो एक ऐसे पंथ से सम्बंधित था जिसकी सब जगह बुराई हो रही थी (प्रेरितों.24:14; 28:22)। इस तरह उन्होंने लोगों को पौलुस की बात भी सुनने से दूर कर दिया था।

कलीसियाई इतिहास में परमेश्वर के हरेक महान् जन की यही कहानी रही है- मार्टिन लूथर, जॉन वैज़ली, चार्ल्स फिन्नी, विलियम बूथ, वॉचमैन नी और ऐसे ही परमेश्वर के हरेक सच्चे नबी की कहानी।

हैनरी सूसो लगभग सौ साल पहले जर्मनी में रहने वाला परमेश्वर का एक जन था। वह एक संतनुमा अविवाहित व्यक्ति था। वह अकसर यह प्रार्थना करता था कि प्रभु उसे स्वयं यीशु की तरह टूटा हुआ और नम्र व दीन व्यक्ति बना दे। परमेश्वर ने उसकी प्रार्थना का इस तरह जवाब दिया। एक दिन सूसो ने अपने दरवाज़े पर एक दस्तक सुनी। जब उसने दरवाज़ा खोला तो वहाँ उसने एक अजीब सी स्त्री को खड़े देखा जिसके हाथ में एक बच्चा था। उसने उसे पहले कभी नहीं देखा था। वह एक दुष्ट स्त्री थी जिसने अपने नए जन्में बच्चे से छुटकारा पाने के लिए यह फैसला किया था कि उसे हैनरी सूसो के सिर पर थोप देने से अच्छी और कोई बात नहीं हो सकती। इसलिए वह इतनी ऊँची आवाज़ में बोली कि उसकी बात बाहर सबको सुनाई दे। "यह ले, अपने पाप का फल," और बच्चे को उसके हाथों में थमा कर चली गई। सूसो पर सन्नाटा छा गया। उस एक ही पल में सबके बीच उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। वह बच्चे को अन्दर ले गया, और उसने घुटने टिका कर प्रभु से यह कहा, "प्रभु,

तू जानता है कि मैं निर्दोष हूँ। अब मैं क्या करूँ?" प्रभु ने कहा, "वही जो मैंने किया है। दूसरों के पाप की पीड़ा को उठा ले।" सूसो ने प्रभु के शब्द को स्वीकार कर लिया और किसी के भी सामने अपने आपको सही ठहराने की कोई कोशिश नहीं की। उसने उस बच्चे को अपने बच्चे की तरह पाला। वह संतुष्ट था कि परमेश्वर इस बात के सत्य को जानता था, और उसे यह चिंता नहीं थी कि लोग उसे ग़लत समझ रहे थे। बहुत साल बीतने के बाद एक दिन उस स्त्री को उसके पाप के लिए दोषी ठहराया गया, और उसने आकर सबके सामने यह घोषणा की कि सूसो निर्दोष था और उसने झूठ बोला था। लेकिन इन गुज़रे हुए सालों में क्या हुआ था? हैनरी सुसो की प्रार्थना का जवाब दिया गया था। वह अपने स्वामी की तरह टूटा हुआ और नम्र व दीन हो गया था। परमेश्वर सूसो के जीवन में पवित्रीकरण का एक काम पूरा कर सका, उसे मनुष्यों के मत से छुटकारा दिला सका कि उसके बाद उसके जीवन में सिर्फ परमेश्वर के ही मत का महत्व रह जाए।

यीशु की तरह बनने के लिए क्या हम ऐसी क़ीमत चुकाने के लिए तैयार हैं? या हम अब भी मनुष्यों से आदर पाना चाहते हैं?

परमेश्वर ऐसा होने देता है कि हम ग़लत समझे जाने द्वारा, ग़लत न्याय किए जाने द्वारा, झूठे आरोप लगाने द्वारा, और लोगों के सामने अपमानित किए जाने द्वारा टूटें। ऐसे सभी हालातों में, हमें अपने सताने वाले मनुष्यों को देखने से इनकार करते रहना चाहिए। वे हमारे भाई हो सकते हैं या हमारे शत्रु। इससे कोई फर्क़ नहीं पड़ता। हरेक यहूदा इस्करियोती के पीछे हमारे स्वर्गीय पिता का हाथ है जो पीने के लिए हमें एक प्याला दे रहा है। अगर हम ऐसी परिस्थितियों में अपने स्वर्गीय पिता के हाथ को देखेंगे, तो वह चाहे कितना भी कड़वा और दु:खद क्यों न हो, हम उसे आनन्द-पूर्वक पी लेंगे। लेकिन अगर हमें सिर्फ यहूदा नज़र आएगा, तो हम अपनी तलवार निकाल कर (जैसे पतरस ने किया था) लोगों के कान (या उनकी प्रतिष्ठा), या जो कुछ भी है, काटते रहेंगे।

जब हम पर हमला हो, या हम पर झूठा आरोप लगाया जाए, तो परमेश्वर चाहता है कि हम उसके सामर्थी हाथ के नीचे स्वयं को दीन करें। एक बार जब हम यह देख लेते हैं कि वह किसी मनुष्य का नहीं परमेश्वर का हाथ है, तो हमारे लिए ऐसा कर पाना आसान होता है।

बीते सालों में, मैंने मेरे बारे में और मेरी शिक्षा के बारे में, बहुत से "विश्वासियों" को हर तरह की बुरी बातें बोलते हुए सुना है। उन्होंने मेरे और मेरे परिवार के सदस्यों के ख़िलाफ झूठे आरोप लगाए हैं, और लेख और

पुस्तकें भी लिखी हैं। लेकिन प्रभु ने मुझसे हमेशा यही कहा है कि मैं उनके *आरोपों का कभी कोई जवाब न दूँ।* इसलिए मैं ख़ामोश रहा हूँ। इसके परिणाम स्वरूप, प्रभु ने *मुझ में,* और मेरे *परिवार में,* पवित्रीकरण का महान् काम किया है! परमेश्वर बुराई में से हमारे लिए भलाई पैदा कर देता है।

प्रभु अपने ठहराए हुए समय पर, सारे बादल हटा देगा और सूर्य को चमकाएगा। लेकिन उस समय को वही तय करता है, मैं नहीं (जैसा कि हम प्रेरितों के काम 1:7 में पढ़ते हैं)। तब तक, मेरा काम यह है कि मैं उसके सामर्थी हाथ के नीचे स्वयं को नम्र व दीन करता रहूँ। यह मेरा काम नहीं है कि मैं किसी के सामने स्वयं को सही ठहराऊँ। अगर मैं ऐसा करने लगूँगा तो मेरे पास और कुछ करने का समय ही नहीं रहेगा। जैसा पौलुस ने सिकन्दर ताम्रकार के बारे में कहा था, प्रभु एक दिन स्वयं हमारे शत्रुओं को उनके काम के अनुसार बदला देगा (2 तीमु.4:14)। तो हम बदला लेने के ऐसे मामलों को आसानी से प्रभु के हाथों में सौंप सकते हैं (रोमियों 12:19)।

सभी मामलों को प्रभु के हाथ में सौंप देना सबसे अच्छा होता है। वह जानता है कि वह क्या कर रहा है, और सब कुछ उसके वश में है। वह पत्थर को तराश रहा है ताकि हमारे भीतर से यीशु की छवि नज़र आने लगे। अगर हम तराशे जाने के लिए अपने आपको उसके हाथों में सौंप देंगे, तो अंत में हम ऐसे मसीह-समान लोगों के रूप में प्रकट होंगे जिनके पास आत्मिक अधिकार है।

यहूदा द्वारा यीशु को धोखा दिए जाने के बाद भी, वह उसे "मित्र" कह सका क्योंकि उसे अपने पिता का हाथ स्पष्ट नज़र आ रहा था। अगर हम अपने सारे हालातों में परमेश्वर की सर्वसत्ता को देखते हैं, तो हमें स्वयं को दीन करना आसान हो जाएगा। और परमेश्वर के लिए भी *उचित समय पर* हमें उन्नत करना आसान हो जाएगा। परमेश्वर हमारे कंधों पर से बोझ हटाने, और हमें उसका अधिकार देने का *उचित समय* जानता है। इसलिए हम उसकी बाट जोहते रहें। जो भी उसकी बाट जोहते हैं, वे न तो कभी निराश और न कभी लज्जित होंगे (यशा. 49:23)।

जैसा कि मैंने पहले कहा है, उन्नत होने का अर्थ यह नहीं कि परमेश्वर हमें इस संसार में ऊँचा उठाएगा। और न ही वह हमें बड़े *मसीही* संगठनों के अध्यक्ष बना देगा। एक बड़े संगठन की बात छोड़िए, मुझे तो *किसी भी* संगठन का अध्यक्ष बनने में कोई दिलचस्पी नहीं है। मैं सिर्फ वही करते हुए जो प्रभु मुझसे कहता है, और उनकी ज़िम्मेदारी लेते हुए जिन्हें प्रभु मुझे सौंपता है, प्रभु का और लोगों का सेवक बने रहना चाहता हूँ- फिर चाहे वे दस लोग हों या

दस हज़ार हों। उनकी संख्या प्रभु तय करता है– मैं नहीं। और यह निश्चित है कि मुझे मसीही जगत में किसी तरह की कोई पदवी या प्रतिष्ठा में दिलचस्पी नहीं है। और न ही मैं लोगों पर, धन–सम्पति पर, या ज़मीन–जायदाद पर किसी तरह का कोई अधिकार हासिल करना चाहता हूँ। मैं सिर्फ वचन का प्रचार करना चाहता हूँ और इस ज़रूरतमंद जगत में लोगों की सेवा करना चाहता हूँ।

हमें यीशु के पद्–चिन्हों पर चलें। लोगों को हमारे बारे में जो भी कहना हो, वे कहते रहें। अगर हम परमेश्वर का आदर करेंगे, तो एक दिन वह भी हमारा आदर करेगा। अगर हम प्रभु के पीछे चलने के प्रति गंभीर होंगे, तो हम यह पाएंगे कि परमेश्वर हमें बहुत से पीड़ादायक अनुभवों में से गुज़रने देगा। लेकिन उन सब में उसका उद्देश्य यही होगा कि वह हमें मनुष्यों के मतों से, और उन ज़ंजीरों से मुक्त करे जो हमें इस पृथ्वी से बाँधे रखती हैं कि फिर हम *"उकाबों के समान पंख फैला कर उड़ सकें"* (यशा. 40:31)।

परमेश्वर हमारे हालातों को इस तरह आयोजित करेगा कि हमें मनुष्यों के सामने नम्र व दीन करे, जिससे कि हम अंततः उस जगह पहुँचाए जाएं जहाँ हमें सिर्फ परमेश्वर के ही मत में दिलचस्पी रह जाए। तब हमारा आत्मिक अधिकार वास्तव में बहुत सामर्थी होगा। ऐसा हो कि यह हममें से सब के लिए पूरा हो।

अध्याय 14

मलिकिसिदक के याजक पद वाला

एक आत्मिक अगुवा मलिकिसिदक की रीति पर याजक होगा, जैसा कि उससे पहले उसका स्वामी था (इब्रा. 6:20-7:7)। मलिकिसिदक का याजकपद लेवी के याजकपद से बहुत भिन्न् है (देखें इब्रानियों अध्याय 7)। लेवीय याजकपद में बहुत सी विधियाँ और बाहरी बातें थीं। हारून के पुत्रों को यह भी बताया गया था कि परमेश्वर के सम्मुख सेवकाई करते समय उन्हें किस तरह के भीतरी वस्त्र पहनने हैं (लैव्य. 6:10; 16:4)। लेकिन मलिकिसिदक के याजकपद का वस्त्रों या विधियों से कोई सम्बंध नहीं है!

मलिकिसिदक पूरी बाइबल में *सिर्फ तीन पदों* में नज़र आता है लेकिन फिर भी हमारे प्रभु को उसकी रीति के अनुसार महायाजक कहा गया है (उत्पत्ति 14:18:20)! मलिकिसिदक ने ऐसा क्या किया था जो ऐसा अद्‌भुत था?

अब्राहम एक ऐसे युद्ध में से लौटा था जिसमें उसने 14 राजाओं और उनकी सेनाओं को हराया था, और अपने भतीजे लूत और उसके परिवार को छुड़ा कर लाया था जिन्हें वे राजा पकड़ ले गए थे। अब्राहम अवश्य ही थका हुआ होगा और उसे अपनी जीत पर गर्व भी हो रहा होगा क्योंकि उसने सिर्फ ऐसे 318 सेवकों के साथ मिलकर वह जीत हासिल की थी जिनमें से कोई योद्धा भी नहीं था! उसने बहुत सा माल-सामान भी हासिल किया था जो, उस समय की परम्परा के अनुसार, विजेताओं को आपस में बाँटना होता था। इसमें कोई शक नहीं उसके 318 सेवक उस माल-सामान से धनवान हो जाने का विचार कर रहे होंगे!

इसलिए उस दिन अब्राहम शारीरिक रूप से थका हुआ, और गर्व और लोभ के दोहरे ख़तरे से घिरा हुआ वहाँ खड़ा था। लेकिन इन ख़तरों से उसे

सचेत करने वाला वहाँ कोई नहीं था। उसके पास सिर्फ उसके 318 सेवक थे। इसमें कोई शक नहीं कि अब्राहम परमेश्वर का एक महान् जन था, लेकिन वह बहुत अकेला भी था। वह ऐसा ही अकेला था जैसे आज के बहुत से मसीही अगुवे होते हैं, जो संस्थाओं की बहुत ऊँची मिनारों पर बैठे होते हैं, और वहाँ सिर्फ उनके अधीन *"जी-हुज़ूरी"* करने वाले लोग ही होते हैं, लेकिन उनकी ग़लती बताने या उन्हें चुनौती देने वाला कोई नहीं होता! ऐसे लोग शैतान के लिए आसान शिकार होते हैं, जो उन्हें सहजता से एक-एक कर मार गिराता है।

लेकिन परमेश्वर को अब्राहम की फिक्र थी और इसलिए उसने अपने एक अन्य सेवक को उसकी मदद के लिए भेजा। मलिकिसिदक ने अनजाने ही अब्राहम की तीन ज़रूरतें पूरी की थीं, क्योंकि उसने वही किया जो परमेश्वर ने उससे करने के लिए कहा था।

सबसे पहले, वह अब्राहम के लिए कुछ *खाना* ले गया। मलिकिसिदक एक बुद्धिमान व्यक्ति था! वह ऐसे अति-आत्मिक व्यक्तियों की तरह नहीं था जो यह समझते हैं कि आत्मिक लोगों को तपस्वी लोगों की तरह होना चाहिए! उसने अब्राहम को उपवास और प्रार्थना करने के लिए नहीं कहा बल्कि उसे अच्छा खाना खिलाया!

बहुत सालों के बाद परमेश्वर ने यही एलिय्याह के लिए भी किया था जब वह थका हुआ और हताश था। परमेश्वर ने उसके पास एक स्वर्गदूत को भेजा, एक *"उत्साहित करने वाली बात"* के साथ नहीं लेकिन *पोषित करने वाले खाने* के साथ (1 राजा 19:5-8)!

यह हमारे लिए एक अनुकरणीय उदाहरण है- कि अपने किसी थके-मांदे भाई या बहन के लिए कुछ खाने के लिए ले जाएं। जब एक विश्वासी हताश या निरुत्साहित होता है, तो हो सकता है कि उसे किसी उत्साहवर्धन की नहीं बल्कि सिर्फ कुछ अच्छे खाने की ज़रूरत हो, क्योंकि वह सिर्फ एक जीव और आत्मा ही नहीं है, *बल्कि देह भी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए!*

उसे खाना देने के बाद मलिकिसिदक ने अब्राहम की आत्मिक रीति से भी मदद की- उसके सामने प्रचार करके नहीं, बल्कि, दो छोटे वाक्यों में, अब्राहम की जीत के लिए परमेश्वर की स्तुति करने के द्वारा।

उसने कहा, *"स्वर्ग और पृथ्वी के सृष्टिकर्ता परम-प्रधान परमेश्वर की ओर से अब्राहम धन्य हो! परम-प्रधान परमेश्वर भी धन्य है, जिसने तेरे शत्रुओं को तेरे वश में कर दिया" (उत्पत्ति 14:19-20)।*

मलिकिसिदक को शायद अब्राहम और उसके सेवकों को खिलाने-पिलाने में दो घण्टे लगे होंगे और परमेश्वर की स्तुति करने में 15 सैकन्ड। लेकिन मलिकिसिदक की स्तुति की अभिव्यक्ति से अब्राहम को *दो बातें* समझ आई थीं।

सबसे पहले, अब्राहम को यह समझ आया कि वह एक ऐसे परमेश्वर का है जो आकाश और पृथ्वी का मालिक है। इससे वह सोदोम के राजा के उस माल-सामान का लोभ करने से बच गया जो उसने प्राप्त किया था। हालांकि सोदोम से प्राप्त की गई वस्तुएं काफी मूल्यवान होंगी क्योंकि सोदोम एक सम्पन्न नगर था, लेकिन अब अब्राहम यह देख सका था कि जिस स्वर्ग और पृथ्वी का स्वामी परमेश्वर है, उसकी तुलना में वह सब कूड़े-करकट के समान ही था। मलिकिसिदक ने अब्राहम की उस परमेश्वर को साफ-साफ देखने में मदद की जो उसका स्वामी था।

यहाँ मलिकिसिदक की बुद्धि पर ध्यान दें। उसने अब्राहम को यह कहते हुए प्रचार नहीं किया, "प्रभु ने मुझसे कहा है कि तू लोभ में फँस गया है, और उसकी तरफ से मैं तुझे चेतावनी देने आया हूँ"! नहीं। ऐसे स्व-नियुक्त "नबियों" से सावधान रहें जो यह दावा करते हैं कि उनके पास आपके लिए "*परमेश्वर का वचन*" है! ऐसे "नबी" *झूठे* नबी हैं। मलिकिसिदक ने अब्राहम के ध्यान को उस माल-सामान पर से हटा कर परमेश्वर की ओर लगा दिया था। और अब्राहम की आँखों के सामने *"पृथ्वी की वस्तुएं धुँधली पड़ती गईं।"* लोगों की मदद करने का यही तरीक़ा है। हम मलिकिसिदक के कृपा से भरे अप्रत्यक्ष तरीक़े से बहुत कुछ सीख सकते हैं जिसने अब्राहम को उसके सामने आ खड़े हुए आत्मिक ख़तरे से बचाया।

दूसरी बात, अब्राहम स्पष्ट रूप में यह देख सका कि उन राजाओं को हराने वाला वह और उसके 318 सेवक नहीं थे, बल्कि परमेश्वर था! यह एक और ऐसा प्रकाशन था जिसने अब्राहम को *गर्व* से बचाया था। मलिकिसिदक ने फिर से अब्राहम का ध्यान उसकी जीत पर से हटा कर परमेश्वर पर लगा दिया था!

सबसे अच्छा प्रचारक वही होता है जो हमारे ध्यान को हमारे ऊपर से, और हमारी उपलब्धियों के ऊपर से हटा कर स्वयं प्रभु के ऊपर लगा देता है।

मलिकिसिदक अय्यूब को प्रचार करने वाले स्व-धर्मी एलीपज, बिलदद और सोपर जैसे प्रचारकों से बिलकुल भिन्न था! ये तीन मानो *फरीसियों के "पूर्वज" थे!* आज मसीही जगत में *फरीसियों के बहुत से "वंशज"* मौजूद हैं। हमें आज बहुत से मलिकिसिदकों की ज़रूरत है।

अब हम इस कहानी के सबसे अच्छे भाग पर पहुँचते हैं। अब्राहम को आशिष देने के बाद मलिकिसिदक ग़ायब हो गया। हम बाइबल में उसके बारे में फिर कहीं नहीं पढ़ते। उसका उल्लेख बस एक मसीह-समान पात्र के रूप में ही है।

उस दिन मलिकिसिदक ज़रूर अपने तम्बू में प्रार्थना कर रहा होगा जब परमेश्वर ने उससे यह कहा कि उसे क्या करना है। वह अब्राहम को नहीं जानता था, लेकिन वह परमेश्वर को जानता था। और उतना काफी था। परमेश्वर ने उसे बताया कि उसे क्या करना है, और वह बहुत से लोगों के लिए एक आशिष बना।

हम जो मलिकिसिदक की रीति के याजक हैं, हमें कितनी ज़बरदस्त सेवकाई के लिए बुलाया गया है! हमें लोगों को शारीरिक रीति से और आत्मिक रीति से आशिष देनी है- और इससे पहले कि कोई हमें धन्यवाद भी दे सके, हमें ग़ायब हो जाना है!

क्या आप यह चाहते हैं कि लोग आपको परमेश्वर के एक महान् जन के रूप में जानें या यह वे यह जानें कि *आपका* ***महान् परमेश्वर*** है। इसमें एक *धार्मिक* सेवकाई और *आत्मिक* सेवकाई का भेद रखा हुआ है। इसमें हारून की सेवकाई और मलिकिसिदक की सेवकाई का भेद रखा हुआ है। हारून लगातार लोगों के सामने आता और उनसे प्रशंसा पाता रहता था। मलिकिसिदक ने लोगों की सेवा की और फिर वह ग़ायब हो गया!

यीशु ने भी पृथ्वी पर अपनी सेवकाई इसी तरह से की थी। उसने घूम-घूम कर ऐसे लोगों की शारीरिक और आत्मिक ज़रूरतें पूरी की जो जीवन के संघर्षों में हारे हुए लोग थे। और उसने यह कभी नहीं चाहा था कि उसके द्वारा की गई चंगाई के बारे में चर्चा की जाए। उसने कभी यह नहीं चाहा कि उसे एक चंगा करने वाले के रूप में जाना जाए। उसने कभी राजा नहीं बनना चाहा। वह दूसरों की सेवा के लिए और उनके लिए अपनी जान देने आया था। वह प्रसिद्ध होना नहीं चाहता था। अपने *पुनरुत्थान के बाद* उसने हेरोद, पिलातुस, हन्ना या कैफा के सामने यह भी साबित नहीं करना चाहा कि वह परमेश्वर का पुत्र है। वह अपने पुनरुत्थान के बाद एक भी फरीसी या सदूकी के सामने प्रकट नहीं हुआ क्योंकि वह अपने आपको लोगों के सामने सही ठहराना नहीं चाहता था। वह जानता था कि मनुष्यों के मत सिर्फ कूड़े के डब्बे में डालने लायक़ होते हैं! हाय, हमें मसीही जगत में आज ऐसे प्रचारक और अगुवे कहाँ मिलेंगे?

ज़रा सोचें कि अगर हम मलिकिसिदक की तरह जीने लगें, परमेश्वर की सुनने लगें, और उससे यह जानने की खोज में रहने लगें कि वह प्रतिदिन हमसे क्या चाहता है, तो क्या होगा। यह हममें से किसी के लिए भी पृथ्वी पर जीने का सबसे उपयोगी तरीक़ा होगा।

भजनकार ने कहा, *"निश्चय भलाई और करुणा जीवन भर मेरे साथ बनी रहेंगी"* (भजन. 23:6)। यह जीने का तरीक़ा है। हम जहाँ भी जाएं, अपने पीछे *भलाई और करुणा* का एक काम या शब्द ज़रूर छोड़ कर आएं।

जब पतरस ने कुरनेलियुस के सामने यीशु के जीवन और सेवकाई का बयान किया, तो यह उसने प्रेरितों के काम 10:38 में एक ही वाक्य में व्यक्त कर दिया: *"वह पवित्र आत्मा से अभिषिक्त था और वह भलाई करता, और उन सब को जो दुष्टात्माग्रस्त थे, चंगा करता फिरा क्योंकि परमेश्वर उसके साथ था।"* पवित्र-आत्मा द्वारा वास्तव में अभिषिक्त होने का यह परिणाम होता है: *परमेश्वर हमारे साथ होता है, और हम जहाँ भी जाते हैं लोगों को आशिष देते और उन्हें मुक्त करते हैं।*

यीशु के पृथ्वी पर रहने के दिनों में आप उसके संपर्क में आने के बाद उसके अन्दर से निकली और आपको आशिषित करने वाली भलाई प्राप्त किए बिना नहीं रह सकते थे- शारीरिक और आत्मिक दोनों ही। उस स्त्री ने, जिसे 12 वर्ष से लहू बहने की बीमारी थी, उसके वस्त्र के छोर को हाथ लगाते ही यह जान लिया था।

क्या हमें भी ऐसा ही जीवन जीने के लिए नहीं बुलाया गया कि हमारा जीवन जिसे भी छुए, वह शारीरिक और आत्मिक रीति से आशिष पाए?

हम सभी मलिकिसिदक की रीति पर याजक होने के लिए बुलाए गए हैं।

अध्याय 15

एक उदाहरण

एक आत्मिक अगुवा दूसरों के लिए ऐसा उदाहारण होगा कि वह उनसे यह कह सकेगा, "मेरा अनुसरण करो, जैसे मैं मसीह का अनुसरण करता हूँ।" वह यही चाहेगा कि दूसरों की अगुवाई करते हुए वह उन्हें, उनके सिर के रूप में सिर्फ मसीह से जोड़े।

लेकिन, बहुत से मसीही अगुवे विश्वासियों को स्वयं से जोड़े रखते हैं। और वे इस बात से ही खुश होते हैं जब विश्वासी दूसरे अगुवों से ज़्यादा उनसे जुड़े रहते हैं। ऐसे अगुवे फिर अपने झुण्ड के लिए "गौण देवता" समान बन जाते हैं। पवित्र-शास्त्र में प्राचीनों के अधीन रहने की शिक्षा का वे अपने लाभ के लिए दुरुपयोग करते हैं।

बाइबल कहती है कि एक दिन मसीह विरोधी परमेश्वर के मन्दिर में आकर बैठेगा और स्वयं को लोगों के सामने परमेश्वर के रूप में प्रस्तुत करेगा (2 थिस. 2:4)। कलीसिया परमेश्वर का मन्दिर है और प्रेरित यूहन्ना ने कहा कि मसीह-विरोधी की आत्मा से भरे लोग उसके समय में भी कलीसिया में मौजूद थे (1 यूहन्ना 2:18,19)! ऐसे लोग आज पहले से बहुत ज़्यादा हैं।

इस सृष्टि में पाप ने तब प्रवेश किया जब एक रची हुई सृष्टि ने यह चाहा कि वह दूसरों की नज़र में ज़्यादा *दृश्यमान* हो जाए और परमेश्वर जैसा बन जाए। लूसिफर इस तरह शैतान बना था। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए। अगर हमें यह आत्मा हमारे अन्दर नज़र आए, तो हमें उसे उसके असली रूप में- *शैतान की आत्मा* के रूप में पहचान लेना चाहिए।

दूसरी तरफ, उद्धार तब आया जब परमेश्वर के पुत्र ने अपने आपको दीन किया और जहाँ तक हो सकता था, उतना *अदृश्य* किया। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए।

सृष्टि में पाप शैतान के गर्व में से आया, और उद्धार यीशु मसीह की नम्रता में से आया।

जब लोग यह देखते हैं कि आज के मसीही अगुवे किस तरह सार्वजनिक मंचों पर से, और अपनी पत्रिकाओं में अपने आपको दृश्यमान करते हैं, तो क्या आप समझते हैं कि उन लोगों के सामने अपनी खुदी-से-इनकार करने वाले, नम्र व दीन यीशु का सच्चा चित्र नज़र आता है? बिलकुल भी नहीं।

जो उदाहरण आज के युवा विश्वासियों को देखने की ज़रूरत है, वे ऐसे खुदी-से-इनकार करने वाले व्यक्तियों का होने चाहिए जो अपने आपको छुपाना और अनजाना बनाए रखना चाहता हैं, जो यह नहीं चाहते कि उनकी बहुत प्रशंसा की जाए, और जो अपना काम ख़ामोशी से करते हैं और ग़ायब हो जाते हैं।

यह वह सेवकाई है जिसकी लालसा हम सब में होनी चाहिए।

माने लें कि आपने प्रभु के लिए कोई काम किया और यह किसी को मालूम नहीं है कि वह आपने किया है। यह आपके लिए एक उत्तेजना की बात होनी चाहिए। इससे भी बढ़ कर, अगर किसी दूसरे को उसका श्रेय मिल जाता है, तो यह बात आपके लिए और भी ज़्यादा उत्तेजनापूर्ण होनी चाहिए! अगर आप ऐसे हैं, तो आप वास्तव में मलिकिसिदक की रीति पर याजक हैं।

मुझे वह दिन याद हैं जब मैं एक युवा मसीही के रूप में अलग-अलग कलीसियाओं में जाता था और उनके अगुवों और प्राचीनों को देखता था। मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि मैंने उनमें से किसी में यीशु के इस आत्मा को नहीं देखा। मैं उन पर दोष नहीं लगा रहा हूँ क्योंकि मैं न्यायकर्ता नहीं हूँ। मैं सिर्फ यह कह रहा हूँ कि *मैं उनका इस रूप में आदर नहीं कर सका कि एक ईश्वरीय उदाहरण के रूप में मैं उनका अनुसरण कर सकूँ।*

हमें किसी पर दोष नहीं लगाना है। लेकिन यह *ज़रूरी है* कि हम लोगों को परखें। दूसरों पर दोष न लगाने की बात कहने के फौरन बाद, यीशु ने अपने शिष्यों को सचेत रहते हुए सुअरों, कुत्तों और झूठे नबियों को परखने के लिए कहा (मत्ती 7:1 की तुलना पद 6 व 15 से करें)। अगर हममें परख नहीं है, तो हमें कुत्तों और झूठे नबियों द्वारा भरमाए जाएंगे (देखें फिलि. 3:2)।

इसलिए मैंने अपने प्राचीनों पर दोष नहीं लगाया, लेकिन मैंने उन्हें इस योग्य नहीं पाया कि मैं उनके उदाहरण का अनुसरण करूँ, क्योंकि उनमें यीशु की तरह एक सेवक की आत्मा नहीं थी। वे ऐसे लोग नहीं थे जो संतों के पैर

धोने के लिए तैयार होते। उसी समय मैंने यह फैसला कर लिया कि जब तक मुझे कोई ऐसा अगुवा नहीं मिलता जो मेरे लिए एक उदाहरण बन सके, तब तक मैं सिर्फ यीशु के सामने ही देखूँगा।

हम पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है कि हम अगली पीढ़ी के सामने यह प्रदर्शित करें कि मसीह-समान होना क्या होता है। जो लोग हमारे सामने देखते हैं- हम कैसे जीते हैं, प्रचार करते हैं, सेवा करते हैं- उन्हें यह भी नज़र आना चाहिए कि प्रभु का एक सच्चा सेवक होने का अर्थ क्या होता है; बीसवीं शताब्दी के फिल्मी-सितारों की शैली के सुसमाचार प्रचारक नहीं, बल्कि पुराने समय के प्रेरितों और नबियों जैसे सेवक।

हमें चाहे इस बात का अहसास हो या न हो, लेकिन हम अपने पीछे एक छवि छोड़ जाते हैं- एक ऐसी छवि जो हमारे लोगों के सामने से चले जाने के बाद, और हमारे किए हुए प्रचार के भुला दिए जाने के बाद, एक लम्बे समय तक उनके साथ रहती है।

जब पौलुस ने इफिसुस की कलीसिया के प्राचीनों को अलविदा कहने के लिए बुलाया, तो ध्यान दें कि उसने उनसे प्रेरितों के काम 20:17-35 में क्या कहाँ उसने उन्हें याद दिलाया कि वह उनके साथ 3 साल तक रहा (पद 31) और यह कि उसने उन्हें दिन-रात प्रचार किया था। तीन साल 1000 दिन से भी ज़्यादा होते हैं। और इसलिए अगर पौलुस ने उन्हें दिन में दो बार भी प्रचार किया होगा, जैसा कि यहाँ प्रतीत हो रहा है, तो उसने 2000 से ज़्यादा संदेशों का प्रचार किया था। इफिसुस वह जगह थी जहाँ एक बड़ी नवजागृति आई थी और जहाँ मसीहियों ने जादू-टोन्हे और तंत्र-मंत्र की अपनी पुरानी पुस्तकें जलाई थीं जिनकी क़ीमत 5 लाख रुपए थी। यही वह जगह भी थी जहाँ पौलुस की देह से छू कर ले जाए गए रूमालों से लोग चंगे हुए थे और दुष्टात्माएं निकल कर भागी थीं। परमेश्वर ने इफिसुस में पौलुस के द्वारा एक ऐसे स्तर पर अद्भुत चिन्ह्-चमत्कार किए थे जो और कहीं नज़र नहीं आते (देखें प्रेरितों. 19:11, 12, 19)।

इस सब के अंत में, पौलुस ने उन प्राचीनों को क्या बात याद दिलाई? क्या उसने उन्हें अपने संदेश और वे चिन्ह्-चमत्कार याद दिलाए थे? नहीं। बल्कि उसने उनसे यह याद रखने के लिए कहा कि जिस दिन से उन्होंने उसे देखा था, उस दिन से ही "वह किस प्रकार बड़ी दीनता के साथ" उनके बीच में रहा था (20:19)। अगर वे उसके प्रचार भुला देते, तो भी वे यह नहीं भूल सकते थे कि वह उनके बीच में *किस तरह* रहा था उसके जीवन ने उन पर एक स्थाई छाप छोड़ दी थी। वे उसकी संवेदना और सहजता को नहीं भूल

सकते थे। उन्हें यह याद रहने वाला था कि उसने उनके बीच में तम्बू बना-बना कर अपने और अपने साथियों के लिए खुद रोटी कमाई थी कि वह उन पर बोझ न बने, और दूसरे मसीही सेवकों के लिए भी एक उदाहरण प्रस्तुत कर सके (पद 34, 35)। वे यह कभी नहीं भूल सकते थे कि उन तीन सालों में पौलुस ने उनमें से किसी से कभी धन, उपहार, या नए कपड़ों की भी कोई आशा नहीं की थी (पद 33)!

पौलुस ने उन्हें यह भी याद दिलाया कि वह कैसे बिना कोई समझौता किए उन्हें परमेश्वर की ***सम्पूर्ण*** इच्छा बताने से नहीं झिझका (प्रेरितों. 20:27)। वह अपने आपको लोकप्रिय बनाने के लिए मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने मन-फिराव और इसी प्रकार के हरेक *अप्रिय* विषय का प्रचार किया था जो उसके श्रोताओं के लिए *लाभदायक* थे, हालांकि उनसे कुछ लोग नाराज़ भी हो गए थे (प्रेरितों. 20:20, 21)।

पौलुस ने उनसे यह सब बातें कीं।

जैसा पौलुस ने किया था, अगर आप तीन साल तक किसी कलीसिया की पासबानी करें, और फिर उसे छोड़ कर जाएं, तो आपका झुण्ड आपकी कौन सी बात याद रखेगा? क्या वे आपको एक प्रभावशाली प्रचारक के रूप में याद करेंगे या *परमेश्वर के एक ऐसे दीन सेवक के रूप में* जिसने अपने जीवन से उन्हें यह दिखाया कि यीशु कैसा था। क्या वे आपके बारे में सोचते हुए यह याद रखेंगे कि आप एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने उन्हें परमेश्वर के और नज़दीक पहुँचाया और उनके सामने मसीह-समान होने की चुनौती रखी या ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसने उन्हें यह सिखाया कि मसीही साहित्य कैसे बाँटना है?

हमारे जो भी वरदान या बुलाहट हैं, वे हमारे मसीह-समान जीवन में से प्रवाहित होने चाहिए।

जिसके पास *चंगाई का वरदान* है, वह उसे ऐसे ही इस्तेमाल करे *जैसे उसे यीशु ने इस्तेमाल किया था*। यीशु एक नम्र व दीन मनुष्य था जो सामान्य जीवन जीता था, सहजता से सब लोगों के बीच में घुल-मिल जाता था, जिसमें रोगियों के लिए बहुत संवेदना थी, और जो चंगाई से पहले या चंगाई के बाद किसी से कोई पैसा नहीं लेता था। वह मुफ्त में लोगों को चंगा करता था।

लेकिन मैं अपने पूरे जीवन में एक भी ऐसे *"चंगा करने वाले"* से नहीं मिला हूँ। अगर आपको ऐसा कोई व्यक्ति मिले, तो *इसकी जानकारी मुझे ज़रूर देना*, मैं भी उससे मिलना चाहूँगा। लेकिन मैं अभी तक ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला हूँ।

इसकी बजाए, मुझे ऐसे धन-के-प्रेमी प्रचारक बहुत मिले हैं जो चंगाई का वरदान होने का दिखावा करते हैं, लेकिन असल में वे लोगों को मनोवैज्ञानिक चालबाज़ी से धोखा देते हैं!

इसमें दु:ख की बात यह है कि जिन्हें इन बातों की परख नहीं है, ऐसे युवा लोग इन धोखेबाज़ों के पीछे चल पड़ते हैं और अपने लिए भी ऐसी ही सेवकाई की खोज में लग जाते हैं! और इस तरह अगली पीढ़ी भी मार्ग से भटक जाती है। यह बात मुझे बहुत पीड़ा पहुँचाती है।

अगर हमारी सेवकाई की बुलाहट प्रेरिताई के लिए है, या नबूवत के लिए है, या सुसमाचार प्रचार के लिए है, या पासबानी है, या सिखाना है, या जो भी है, हमें वह मसीह-समान करना चाहिए। हमारी हरेक बुलाहट में हमें प्रेरित करने वाला आत्मा मसीह का आत्मा होना चाहिए।

अगर आप यह महसूस करते हैं कि परमेश्वर ने आपको एक कलीसिया का पास्टर होने के लिए बुलाया है, तो वह इस तरह करें जैसे वह यीशु ने किया होता। और ऐसा हो कि आपकी जो स्थाई छाप लोगों पर पड़े वह एक ऐसे व्यक्ति की हो जिसमें *यीशु की महिमा का तेज* था।

अब अंत में हमारी *पिछली निष्फलताओं* के बारे में मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ।

हम अपना भूतकाल नहीं बदल सकते। हमारे जीवनों का वह हिस्सा ख़त्म हो चुका है। हम सब निष्फल हुए हैं और हम अपनी निष्फलताओं से अब *सिर्फ अपने मन फिरा सकते हैं*, उनका *अंगीकार* कर सकते हैं, और प्रभु से यह कह सकते हैं कि वह अपने मूल्यवान लहू से हमें *शुद्ध* कर दे।

मैंने अपने जीवन में बहुत सी ग़लतियाँ की हैं। लेकिन मैंने अपनी ग़लतियों से बहुत से पाठ भी सीखे हैं। इसलिए वे सारी निष्फलताएं मेरे लिए व्यर्थ नहीं रही हैं। मैंने दूसरों की निष्फलताओं से भी बहुत से मूल्यवान पाठ सीखे हैं। इस तरह मैं खुद वे ग़लतियाँ करने से बचा रहूँगा।

हम ऐसी बहुत सी बातों से शर्मिन्दा हो सकते हैं जो हमने बीते समय में की हैं। लेकिन जब हम एक बार उनसे मन फिरा लेते हैं, और (जहाँ ज़रूरी है) भरपाई भी कर देते हैं, तो हम अपनी पिछली निष्फलताओं से कुछ पाठ सीख सकते हैं, और हमेशा के लिए अपने भूतकाल को *अपने पीछे छोड़ सकते* हैं।

हमें शैतान को कभी यह अनुमति नहीं देनी चाहिए कि वह हमारी बीती निष्फलताओं के लिए हमें "दोषी" या "दण्डित अपराधी" ठहरा सके। जो

मसीह में हैं, उन पर कोई दण्ड की आज्ञा नहीं है। जब परमेश्वर मसीह के लहू द्वारा हमें धर्मी (सही) ठहराता है (रोमियों 5:9), तो उसके बाद वह हमारे सामने ऐसे देखता है *मानो हमने जीवन में कभी कोई पाप ही नहीं किया है!* हमें भी स्वयं को ऐसे ही देखना चाहिए ***जैसे परमेश्वर हमें देखता*** है।

इसलिए हमें न तो शैतान को और न किसी और को यह अनुमति देनी चाहिए कि हम बेकार हैं क्योंकि हम बीते समय में निष्फल रहे हैं। आप परमेश्वर के हाथ में एक उपयोगी पात्र हैं, क्योंकि आपने मन फिरा लिया है। अब अपना बाक़ी का जीवन आप परमेश्वर की महिमा के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं।

युवाओं को शिष्य बनाने का हम प्राचीनों के पास बड़ा विशेषाधिकार है, क्योंकि उनके आगे अभी उनका पूरा जीवन रखा है। ज़रा सोचिए कि हमारी कलीसियाओं में हरेक युवा में कितनी क्षमता भरी हुई है। याद रखें कि शैतान इन्हें दबोचने के लिए तैयार है। इससे पहले कि वह उन्हें दबोचे, हमें उन्हें परमेश्वर और उसके राज्य के लिए अलग कर लेना है।

इन युवाओं के हृदयों में, एक संघर्ष चल रहा है। अगर शैतान उन्हें उद्धार पाने से नहीं रोक सकेगा, तो वह उन्हें समझौता करने वाला तो ज़रूर बनाना चाहेगा। लेकिन परमेश्वर ने आपको उनका चरवाहा नियुक्त किया है, कि आप यह सुनिश्चित करें कि वे समझौता करने वाले नहीं बल्कि प्रभु के मूल शिष्य बन सकें। इसलिए मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि आप अपनी बुलाहट के प्रति गंभीर हों।

प्रभु हमारी मदद करे कि हम सब मन फिरा कर मुँह के बल गिरें और बीते समय में हमने अगली पीढ़ी के सामने ऐसे बुरे उदाहरण होने के द्वारा जो उसके नाम की बदनामी की है, उसके लिए उससे क्षमा माँगें।

ऐसा हो कि आने वाले दिनों में वह हमें उसके लोगों के नम्र व ईश्वरीय अगुवे होने में मदद करे। आमीन। ***जिसके सुनने के कान हों, वह सुने।***